वाग्देवी
पॉकेट
बुक्स

इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका

एम. एन. राय

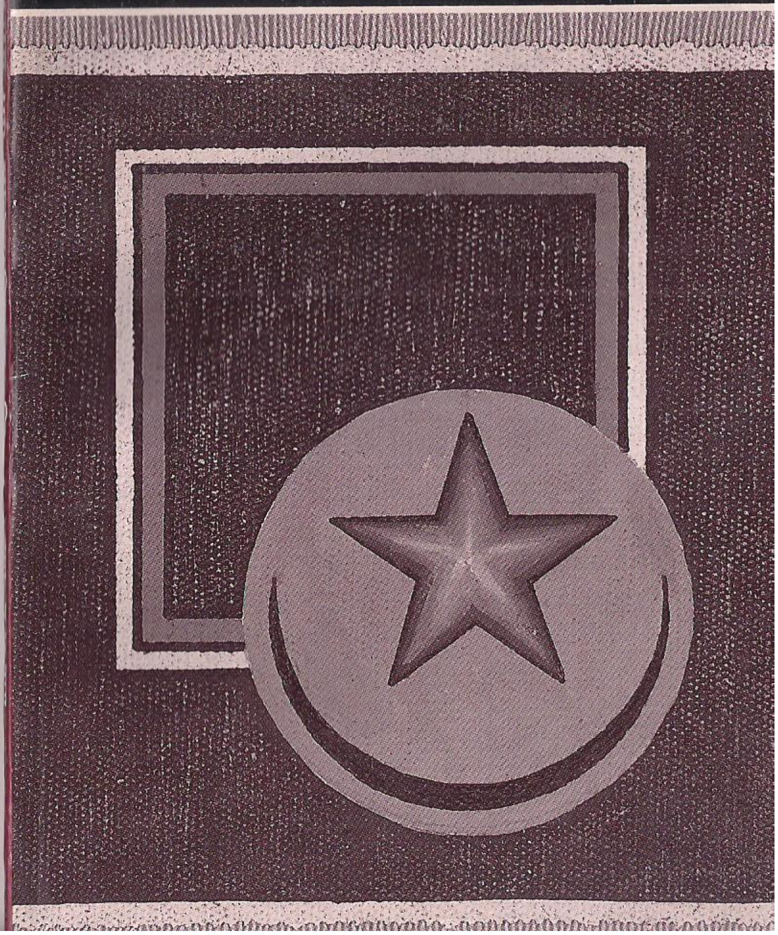

एम. एन. राय

एम. एन. राय (1887-1954 ई.) अनेक दृष्टियों से विलक्षण व्यक्ति थे। उन्होंने कार्य और विचार दोनों क्षेत्रों में अपनी विशिष्टता की छाप छोड़ी है। कार्यक्षेत्र में वे निष्ठावान कर्मठ क्रान्तिकारी थे। विचार क्षेत्र में उनका विकास मौलिक सामाजिक दार्शनिक के रूप में हुआ। उनका राजनीतिक जीवन तीन चरणों से गुजरा है। जीवन का आरम्भ उत्कट राष्ट्रवादी के रूप में हुआ, बाद में वे उत्कट कम्युनिस्ट हुए और अन्त में वे सृजनात्मक रेडिकल ह्यूमनिस्ट विचारक के रूप में विख्यात हुए।

मैक्सिको में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना कर सोवियत संघ के बाहर कम्युनिस्ट पार्टी के वे प्रथम संस्थापक बने।

उपनिवेशों के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलनों में पूंजीवादी वर्गों की भूमिका के प्रश्न पर राय का लेनिन से मतभेद था। कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ के दूसरे सम्मेलन में लेनिन और एम. एन. राय दोनों की थीसिसों को स्वीकार कर लिया गया। एम. एन. राय कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ की नीति-निर्धारण समितियों में उच्च स्थान पर रहे। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का उन्हें संस्थापक माना जाता है।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद एम. एन. राय ने कम्युनिज्म और मार्क्सिज्म से भिन्न अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। मार्क्सवाद से उनका मुख्य मतभेद मानव-इतिहास में विचारों की भूमिका और नैतिक मूल्यों पर जोर देने के प्रश्न पर था। उनके विचारों को 'रेडिकल ह्यूमनिज्म के 22 सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने 'नव मानववाद' का घोषणा-पत्र भी जारी किया।

एम. एन. राय बौद्धिक क्षेत्र में महान् विचारक थे। वे सदैव मौलिक विचारों के स्रोत रहे। उनके जीवन में स्वतंत्रता ही उनकी मौलिक प्रेरणा रही और उसी के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया।

अनुक्रम

13 भूमिका
19 इस्लाम का लक्ष्य
34 इस्लाम की सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
45 विजय के कारण
56 मुहम्मद और उनकी शिक्षाएं
67 इस्लाम का दर्शन
87 इस्लाम और भारत

इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका

एम. एन. राय

वाग्देवी
पॉकेट
बुक्स

वाग्देवी प्रकाशन
सुगन निवास, चन्दनसागर
बीकानेर 334001

© दी इण्डियन रिनेसाँ इन्स्टीट्यूट
संस्करण : 1996

मूल्य : बीस रुपये मात्र

आवरण : अडिग

मुद्रक : सांखला प्रिण्टर्स
सुगन निवास, चन्दनसागर
बीकानेर 334001 ISBN 81-85127-51-4

Islam Ki Aitihasik Bhoomika *(Political thought)*
by M. N. Roy Rs. 20.00

एम. एन. राय

एम. एन. राय अनेक दृष्टियों से विलक्षण व्यक्ति थे। उन्होंने कार्य और विचार दोनों क्षेत्रों में अपनी विशिष्टता की छाप छोड़ी है। कार्यक्षेत्र में वे निष्ठावान कर्मठ क्रान्तिकारी थे। विचार क्षेत्र में उनका विकास मौलिक सामाजिक दार्शनिक के रूप में हुआ। उनका राजनीतिक जीवन तीन चरणों से गुजरा है। उनके जीवन का आरम्भ उत्कट राष्ट्रवादी के रूप में हुआ, बाद में वे उत्कट कम्युनिस्ट हुए और अन्त में वे सृजनात्मक रेडिकल ह्यूमनिस्ट विचारक के रूप में विकसित हुए। उन्होंने रेडिकल ह्यूमनिज्म (रेडिकल मानववाद) के दर्शन का प्रतिपादन किया जो भविष्य के लिए उपयुक्त दर्शन है।

एम. एन. राय का जन्म 21 मार्च, 1887 को पश्चिम बंगाल के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका मूल नाम नरेन्द्र भट्टाचार्य था। 14 वर्ष की अल्पायु से उन्होंने भूमिगत क्रान्तिकारी आन्दोलन में हिस्सा लेना शुरू किया था। वे अनेक राजनीतिक अपराधों और षड्यंत्रों से सम्बद्ध थे। यतीन मुखर्जी के नेतृत्व में उन्होंने और उनके साथियों ने ब्रिटिश सरकार को उखाड़ने के लिए सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनायी थी। जब प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ तो किन्हीं जर्मन गुप्तचरों से यह वचन प्राप्त किया गया कि वे भारतीय क्रान्तिकारियों को शस्त्रास्त्र की आपूर्ति करेंगे। सन् 1915 में एम. एन. राय जावा गये और वहाँ उन्होंने शस्त्रास्त्र पाने के लिए जर्मन लोगों से सम्पर्क किया। जर्मन लोगों से शस्त्रास्त्र पाने की योजना के असफल होने पर वे इसी उद्देश्य से दुबारा जावा गये। इसके

बाद वे एक देश से दूसरे देश गये और जर्मन लोगों से शस्त्रास्त्र प्राप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने अनेक छद्म नामों और जाली पासपोर्टों से एक से दूसरे देशों की यात्राएं कीं। जावा से वे जापान और जापान से चीन गये और फिर जापान वापस गये और सन् 1916 में वे अमेरिका के सेनफ्रांसिसको नगर पहुंचे। उसके कुछ समय बाद ही अमेरिका प्रथम महायुद्ध में मित्रराष्ट्रों के पक्ष में शामिल हो गया और उसके बाद एम. एन. राय और कुछ अन्य भारतीयों के विरुद्ध सेनफ्रांसिसको में एक षड्यंत्र काण्ड का मुकदमा चलाया गया। एम. एन. राय अमरीकी पुलिस को चकमा देकर मैक्सिको जाने में सफल हो गये। उस अवधि में उन्होंने समाजवाद और कम्युनिज्म की कुछ मौलिक पुस्तकों का अध्ययन कर लिया था और वे समाजवादी विचार के पोषक हो गये थे। वे मैक्सिको की समाजवादी पार्टी में शामिल हो गये और शीघ्र ही उसके संगठन मंत्री बना दिये गये। उन्होंने मैक्सिको समाजवादी पार्टी के संगठन का विस्तार किया और उसे सुदृढ़ बनाया और वे उसके जनरल सेक्रेटरी चुने गये। उन्होंने मैक्सिको की समाजवादी पार्टी का एक विशेष अधिवेशन करके उसको मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में बदल दिया। इस प्रकार सोवियत संघ के बाहर कम्युनिस्ट पार्टी के वे प्रथम संस्थापक बने।

कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ के दूसरे सम्मेलन में भाग लेने के लिए एम. एन. राय को मास्को आमंत्रित किया गया। वह सम्मेलन सन् 1920 के जुलाई और अगस्त के महीनों में मास्को में आयोजित किया गया था। एम. एन. राय उसके पहले मास्को पहुंच गये थे और उन्होंने गुलामी के विरुद्ध भारत और चीन के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रश्नों पर लेनिन से विचार-विमर्श किया। उपनिवेशों के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलनों में पूंजीवादी वर्गों की भूमिका के प्रश्न पर एम. एन. राय का लेनिन से मतभेद था। लेनिन के सुझाव पर राष्ट्रीय और औपनिवेशिक प्रश्नों पर लेनिन और एम. एन. राय की थीसिसों (सिद्धान्त पत्रों) को कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ के दूसरे सम्मेलन में

स्वीकार किये जाने के लिए प्रस्तुत किया गया। सम्मेलन में लेनिन और एम. एन. राय दोनों की थीसिसों को स्वीकार कर लिया गया।

एम. एन. राय को कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ की नीति निर्धारण समितियों में उच्च स्थान पर रखा गया। उस समय उनका मुख्य कार्य भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन को विकसित करना था। उन्होंने अनेक कम्युनिस्ट दूतों और कम्युनिस्ट साहित्य भारत भिजवाने की व्यवस्था की। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का उन्हें संस्थापक माना जाता है।

1927 तक स्तालिन ने कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ और रूस की कम्युनिस्ट पार्टी से सभी स्वतंत्र विचार के लोगों को समाप्त करने और निकालने की नीति अपनायी। एम. एन. राय को भी इन नीतियों का शिकार होना पड़ा। एम. एन. राय ने जर्मनी के कम्युनिस्ट विपक्ष के पत्रों के लिए कुछ लेख लिखे, जिनमें कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ की नीतियों की आलोचना की गयी थी। इस अपराध में उन्हें 1929 में कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ से निष्कासित कर दिया गया।

इसके बाद एम. एन. राय ने भारत लौटने का निश्चय किया, यद्यपि वे जानते थे कि भारत में उन्हें गिरफ्तार किया जायेगा और लम्बी अवधि के लिए कारावास की सज़ा मिलेगी। सन् 1924 के प्रसिद्ध कानपुर षड्यन्त्र काण्ड में उनको प्रथम अभियुक्त घोषित किया गया था, लेकिन उस समय राय भारत के बाहर थे अतः उन पर मुकदमा नहीं चल सका था। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के उद्देश्य से वे लम्बी अवधि के कारावास का मूल्य चुकाने के लिए तैयार हो गये थे।

दिसम्बर सन् 1930 में एम. एन. राय गुप्त रूप से भारत आये और जुलाई 1931 में उन्हें गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चलाया गया। उनके विरुद्ध भारत में ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलटने का षड्यन्त्र करने का अभियोग लगाया गया और 12 वर्ष के कठोर कारावास की सज़ा दी गयी। अपील में इस सज़ा को घटा कर छह वर्ष के कठोर कारावास में बदल दिया गया था।

सज़ा पूरी होने के बाद एम. एन. राय को 20 नवम्बर, 1936 को रिहा किया गया। इसके बाद उन्होंने एक सार्वजनिक अपील निकाल कर देशवासियों से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में लाखों की संख्या में भर्ती होने का आग्रह किया। इसके साथ ही उन्होंने यह बात स्पष्ट की कि जब तक कांग्रेस को उग्रवादी और लोकतांत्रिक नहीं बनाया जायेगा तब तक राष्ट्रीय आन्दोलन को सुदृढ़ नहीं किया जा सकेगा। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कांग्रेस संगठन को गांव और ताल्लुका समितियों के रूप में नीचे से संगठित किया जाना चाहिए। कांग्रेस को लोकतांत्रिक स्वतन्त्रता और उग्र ग्रामीण सुधारों के आर्थिक कार्यक्रम को भी अपनाना चाहिए। इन्हीं आधारों पर कांग्रेस को सुदृढ़ बनाया जा सकेगा। उनका विचार था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का संगठन गांव और ताल्लुका समितियों के रूप में राज्य के भीतर राज्य के रूप में संगठित किया जाना चाहिए। योजना यह थी कि उपयुक्त समय आने पर कांग्रेस को राज्य का विकल्प बन कर संविधान सभा का आह्वान करके स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाने की घोषणा करनी चाहिए जो भारतीय लोकतांत्रिक क्रान्ति को आरम्भ करने का शंखनाद का कार्य होगा।

रेडिकल (उग्रवादी) कार्यक्रम के इस आधार पर एम. एन. राय के अनुयायियों ने कांग्रेस के भीतर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में काम करना शुरू किया और कुछ वर्षों के भीतर इतने शक्तिशाली बन गये कि उनकी गिनती बड़े नेताओं में की जाने लगी थी। 1940 में एम. एन. राय और उनके अनुयायियों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा क्योंकि द्वितीय महायुद्ध में भारत के हिस्सा लेने के प्रश्न पर उनका कांग्रेस के नेतृत्व से मतभेद हो गया था।

द्वितीय महायुद्ध के प्राथमिक चरण में टेलीफोनी युद्ध गम्भीरता से नहीं लड़ा गया, लेकिन वह स्थिति अप्रेल 1940 में समाप्त हो गयी जब नाजी सेनाओं ने फ्रांस पर आक्रमण किया। उस समय एम. एन. राय ने यह घोषणा की कि द्वितीय महायुद्ध ने अब फासिस्ट विरोधी युद्ध का

स्वरूप ग्रहण कर लिया है और अब संसार भर में लोकतंत्र के अस्तित्व की रक्षा के लिए यह आवश्यक हो गया है कि मित्रराष्ट्रों के युद्ध प्रयासों का हर कीमत पर समर्थन किया जाय। 'यदि फासिज्म पूरे यूरोप पर अपना प्रभुत्व जमा लेने में सफल हो जायेगा तो क्रांति और भारतीय स्वतंत्रता के सभी सपने नष्ट हो जायेंगे।' उन्होंने पूरे विश्वास के साथ यह भविष्यवाणी की कि फासिज्म की पराजय से साम्राज्यवाद कमजोर होगा और युद्ध के बाद भारत लोकतांत्रिक स्वाधीनता के अधिक निकट पहुंच जायेगा।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व का इससे भिन्न मत था। उन्होंने घोषणा की कि यदि ब्रिटिश सरकार भारत में रक्षा और वैदेशिक सम्बन्धों के अधिकारों के साथ राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करेगी तो भारतीय जनता युद्ध प्रयासों में समर्थन देगी। एम. एन. राय ने शर्तों के साथ युद्ध प्रयासों के समर्थन की कांग्रेस की नीति को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसमें यह बात निहित थी कि यदि शर्त स्वीकार नहीं की गयी तो युद्ध प्रयासों का विरोध किया जायेगा। एम. एन. राय का कहना था कि फासिस्ट विरोधी युद्ध में लोकतांत्रिक शक्तियों की विजय होना भारत की लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है अतः हम उस सफलता को प्राप्त करने के मार्ग में शर्त रखकर अवरोध उत्पन्न नहीं करना चाहते हैं। इस प्रश्न पर एम. एन. राय और उनके मित्रों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और 'रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी' नामक एक नयी राजनीतिक पार्टी का गठन दिसम्बर, 1940 में किया।

काफी पहले दिसम्बर, 1942 में ही एम. एन. राय ने यह विचार व्यक्त किया था कि द्वितीय महायुद्ध में फासिस्ट शक्तियों की पराजय हो जायेगी और ब्रिटेन में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों और फासिस्ट विरोधी युद्ध में मित्रराष्ट्रों के संघर्ष के परिणामस्वरूप भारत को राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त होगी। एम. एन. राय की यह भविष्यवाणी सही साबित हुई। इतिहासकारों में इस बात पर मतैक्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय

फासिज्म की पराजय के परिणामस्वरूप जो मुक्तिदायी शक्तियां सुदृढ़ हुईं उनके कारण ही भारत को राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त हुई है।

जब एम. एन. राय को यह बात स्पष्ट हो गयी कि युद्ध में फासिस्ट शक्तियों की पराजय निश्चित है, तो उन्होंने भारत के युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण की ओर ध्यान दिया। 1943 और 1944 में उन्होंने दो मौलिक दस्तावेज 'भारत के आर्थिक विकास के लिए जन योजना' और 'स्वतन्त्र भारत के संविधान का मसविदा' तैयार कराये। इन दस्तावेजों में देश की आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के सम्बन्ध में एम. एन. राय ने मौलिक विचारों के रूप में अपना योगदान किया। उस समय के प्रचलित आर्थिक विचारों से भिन्न 'जन योजना' में एम. एन. राय ने कृषि और लघु उद्योगों के विकास पर जोर दिया। जन योजना के अनुसार उत्पादन का उद्देश्य उपभोग के लिए उत्पादन करना था, लाभ के लिए नहीं और आर्थिक योजना का लक्ष्य जनता की मौलिक आवश्यकताओं, जैसे भोजन, मकान, कपड़ा, शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था करना था। 'स्वतन्त्र भारत के संविधान' के मसविदे के अनुसार भारतीय राज्य को इस प्रकार संगठित करना था जिसके आधार में जन समितियों का संगठन हो और उन्हें कानून बनाने और विचाराधीन विधेयकों के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करने का अधिकार हो। उन्हें अपने प्रतिनिधियों को वापस बुलाने और महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नों पर जनमत संग्रह में भाग लेने का अधिकार देने का प्रस्ताव था। बाद में जन समितियों को आधारभूत ढंग से संगठित करने के विचार को जयप्रकाश नारायण ने लोकप्रियता प्रदान की। मूल रूप से यह विचार एम. एन. राय के स्वतन्त्र भारत के संविधान के मसविदे से लिया गया है।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद एम. एन. राय ने कम्युनिज्म और मार्क्सिज्म से भिन्न अपने मौलिक विचारों को प्रकट किया। मार्क्सवाद से उनका मुख्य मतभेद मानव-इतिहास में विचारों की भूमिका और नैतिक मूल्यों पर जोर देने के प्रश्न पर था। उन्होंने अपने दार्शनिक

विचार अनेक (22) सिद्धान्तों के रूप में संक्षिप्त रूप में विकसित किये। इन विचारों को 'रेडिकल ह्यूमनिज्म के 22 सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने 'नव मानववाद' का घोषणा-पत्र भी जारी किया।

22 सिद्धान्तों में 'रेडिकल ह्यूमनिज्म' के व्यक्तिगत और सामाजिक सिद्धान्तों की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। उसमें स्वतंत्रता, विवेक और नैतिकता को आधारभूत मूल्य अथवा मर्यादाओं के रूप में स्वीकार किया गया है। उनके द्वारा यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है कि इन सिद्धान्तों का स्रोत मानव के प्राणि-विकास में निहित है। उनमें यह भी कहा गया है कि स्वतंत्रता की मौलिक आकांक्षा और सत्य की खोज मानव प्रगति की आधारभूत आकांक्षाएं हैं। इन सिद्धान्तों में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। उनमें इस बात का भी संकेत है कि राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता के लक्ष्य को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

रेडिकल ह्यूमनिज्म के 22 सिद्धान्तों और घोषणा-पत्र पर आगे के विचार-विमर्श के बाद एम. एन. राय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पार्टीगत राजनीति लोकतंत्र के आदर्श के अनुकूल नहीं है और पार्टीगत राजनीति से लोकतंत्र सत्ता लोलुपता के रूप में भ्रष्ट हो जाता है। एम. एन. राय का यह विचार था कि लोकतंत्र में राजनीतिक सत्ता जनता के आधारभूत संगठनों, जैसे जन समितियों में निहित रहनी चाहिए और सत्ता पर किसी राजनीतिक पार्टी के लाभ के लिए उसका अधिकार नहीं होना चाहिए। उनका यह भी विचार था कि भारत जैसे देश में, जहाँ अधिकतर मतदाता निरक्षर हैं, पार्टीगत राजनीति का अधःपतन सत्ता लोलुपता और उसके लिए सिद्धान्तहीन संघर्ष का रूप ले लेगा। इस प्रकार के विचारों के कारण रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी को उसके अखिल भारतीय अधिवेशन में दिसम्बर, 1948 में भंग करने का निश्चय किया गया और रेडिकल ह्यूमनिस्ट आन्दोलन को एक आन्दोलन के रूप में चलाने का निश्चय किया गया।

रेडिकल ह्यूमनिस्ट आन्दोलन के दौरान एम. एन. राय ने 'सहकारी अर्थ-व्यवस्था' का विचार विकसित किया। उनका विचार था कि सहकारी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर न तो पूंजीपतियों का स्वामित्व होना चाहिए और न राज्य का उन पर अधिकार होना चाहिए। उनका स्वामित्व उन श्रमिकों के हाथ में होना चाहिए जो उनमें काम करते हों। एम. एन. राय का विचार था कि 'सहकारी अर्थ-व्यवस्था' पूंजीवाद और राज्य के स्वामित्व वाली दोनों व्यवस्थाओं से उच्च कोटि की है।

एम. एन. राय बौद्धिक क्षेत्र में महान् विचारक थे। वे सदैव मौलिक विचारों के स्रोत थे। अपने सम्पूर्ण जीवन में उन्होंने अपनी उच्च कोटि की बौद्धिक शक्ति का उपयोग करके स्वतंत्रता के आदर्श की सेवा की। उनके समस्त जीवन में स्वतंत्रता ही उनकी मौलिक प्रेरणा थी और उसी के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया।

नयी दिल्ली

—वी. एम. तारकुण्डे

भूमिका

इस्लाम के अनुयायियों का एकाएक उत्थान और नाटकीय ढंग से उनका प्रसार मानव इतिहास का अत्यन्त रोचक अध्याय है। भारत के इतिहास के आधुनिक युग में उसका निष्पक्ष अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका वैज्ञानिक अध्ययन एक महान् कार्य है और उसके ज्ञान अर्जन से अच्छा लाभ होगा। लेकिन भारत में और विशेष रूप से हिन्दुओं में इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका और मानव संस्कृति में उसके योगदान के महत्त्व की समझदारी का राजनीतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

भारत में अरब के मसीहा हजरत मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक है। यह बात शायद ही लोगों को प्रतीत होती है कि भारत में मुसलमानों की जितनी संख्या है उतनी संख्या किसी भी इस्लाम मानने वाले देश में नहीं है। इसके बावजूद अनेक शताब्दियों के बीत जाने पर भी भारत के बहुत से लोग उनको बाहरी तत्त्व मानते हैं। इस विचित्र लेकिन खेदजनक स्थिति का कारण भारत के राष्ट्रीय ढांचे का इतिहास है। आरम्भ में मुसलमान भारत में आक्रमणकारी के रूप में आये। उन्होंने इस देश को जीता और कई सौ वर्षों तक इस पर राज्य किया। विजेता और पराजित के संबंधों के दाग हमारे राष्ट्रीय इतिहास में पाये जाते हैं, जिनका प्रभाव दोनों पर है। लेकिन पिछले सम्बन्धों की दुखान्त स्मृति वर्तमान गुलामी के समान अनुभव से धीरे-धीरे समाप्त हो रही है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुसलमानों के लिए उतना ही पीड़ादायक और विनाशकारी है जितना वह हिन्दुओं के लिए है। इस प्रकार मुसलमान हमारे राष्ट्र के अन्तरंग हिस्से बन गये हैं और भारत के इतिहास में मुसलमान शासकों के काल का उल्लेख करना सर्वथा उचित है। वास्तव में राष्ट्रवाद ने पिछली पीड़ादायक स्मृतियों को समाप्त करने में सहायता दी है।

भारत के मुसलमान शासकों का राष्ट्रीय इतिहास में उल्लेख और उनकी वास्तविक और काल्पनिक गौरव गाथाओं से हमारे राष्ट्रीय रूप में अच्छे रंग उभरे हैं।

फिर भी हिन्दू, जो अकबर के शासनकाल का उल्लेख करके गौरव अनुभव करते हैं अथवा जो शाहजहां द्वारा निर्मित भवनों की प्रशंसा करते हैं, आज भी अपने पड़ौस में रहने वाले मुसलमान से इतने कटे हैं कि उस खाई को पाटा नहीं जा सकता। हिन्दू भारतीय इतिहास के जिन शासकों के प्रशंसक हैं उनके धर्मावलम्बियों से दूर हैं। सामान्य रूप से रूढ़िवादी हिन्दू, मुसलमानों को, चाहे वे उच्च वर्गों के हों और उनमें उच्च संस्कृति का प्रभाव हो, 'म्लेच्छ', अशुद्ध, बर्बर मानते हैं और उनके साथ हिन्दुओं के निम्नतर वर्गों के लोगों से किये जाने वाले व्यवहार से अच्छा व्यवहार करने को तैयार नहीं होते हैं।

इस स्थिति का कारण वह घृणा है, जो पिछली शताब्दियों में विजेता के प्रति उत्पन्न हुई थी और पराजित लोग विदेशी आक्रमणकारियों के प्रति स्वाभाविक ढंग से घृणा करते थे। जिन राजनीतिक सम्बन्धों के कारण ऐसी भावना उत्पन्न हुई थी वह प्राचीन काल की बात थी। लेकिन उस घृणा की भावना का अब

भी बना रहना हमारे राष्ट्र की एकता के लिए बाधक है, साथ ही वह कारण इतिहास के निष्पक्ष अध्ययन में बाधक है। वास्तव में इस बात का और कोई उदाहरण नहीं मिलता जिसमें एक देश में दो समुदायों के लोग सैकड़ों वर्षों से एक साथ रहते हों और वे एक दूसरे की संस्कृतियों को उचित ढंग से समझने से दूर हों। कोई भी सभ्य देश इस्लाम के इतिहास से इतना अनभिज्ञ नहीं है जितना हिन्दू हैं और वे मुसलमानों के धर्म से घृणा करते हैं। हमारे राष्ट्रवाद के सिद्धान्त का मुख्य लक्षण आध्यात्मिक साम्राज्यवाद की भावना है। लेकिन यह खराब भावना मुसलमानों के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट है। अरब मसीहा हजरत मुहम्मद के उपदेशों के सम्बन्ध में यहां सबसे अधिक अज्ञान है। सामान्य रूप से शिक्षित हिन्दू को इस्लाम के अत्यन्त क्रान्तिकारी महत्त्व की जानकारी नहीं है और न ही उसकी समझदारी है। इस प्रकार की अनभिज्ञता को हास्यास्पद माना जा सकता था यदि उससे हानिकारक परिणाम निकलने का खतरा नहीं होता। इन दुर्भावनाओं का मुकाबला किया जाना चाहिए जिससे भारतीय जनता विज्ञान और इतिहास के सत्य को सही तरीके से समझ सके। भारतीय इतिहास के इस संकट काल में इस्लाम के सांस्कृतिक महत्त्व को समझने की सबसे अधिक आवश्यकता है।

महान् इतिहासकार गिबन ने इस्लाम के प्रसार का उल्लेख करते हुए लिखा है—'वह एक ऐसी अविस्मरणीय क्रान्ति है जिसने संसार भर के राष्ट्रों के चरित्र पर नया और स्थायी प्रभाव छोड़ा है।' कोई भी व्यक्ति इस बात से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकता कि किस प्रकार प्राचीन काल के दो महान् साम्राज्यों को अरब के रेगिस्तान के नये धर्म के उत्साह वाले बद्दुओं ने तेजी से नष्ट कर

दिया। हजरत मुहम्मद ने तलवार की नोक पर शान्ति का संदेश देने वाले मसीहा की भूमिका अपनाने के पचास वर्ष के भीतर उनके अनुयायियों ने इस्लाम का झंडा एक ओर भारत में और दूसरी ओर अटलांटिक महासागर के तट पर फहरा दिया। दमिश्क के प्रथम खलीफाओं के साम्राज्य को तेज रफ्तार वाले ऊंट पर बैठ कर पांच महीने की अवधि के पहले पार नहीं किया जा सकता था। हिजरी की पहली सदी के अन्त में 'धर्म के सेनापति' संसार के सबसे शक्तिशाली शासक बन गये थे।

प्रत्येक मसीहा अपने ईश्वरीय गुणों को प्रमाणित करने के लिए अद्भुत रहस्यों को प्रकट करने का दावा करता है। इस दृष्टि से हजरत मुहम्मद अपने पहले और बाद के सभी मसीहाओं से महान् हैं। उनका महान् रहस्य इस्लाम का प्रसार है। अगस्तस के रोम साम्राज्य का प्रसार जिसे बाद में महान् योद्धा ट्राजन ने बढ़ाया था, सात सौ वर्षों में लड़े गये युद्धों में विजय प्राप्त करने से हुआ था। फिर भी वह अरब साम्राज्य की तुलना में, जो एक सदी से कम समय में स्थापित किया गया था, बड़ा नहीं था। अलक्जैंडर का साम्राज्य तो खलीफाओं के साम्राज्य के एक हिस्से के बराबर था। फारस के साम्राज्य ने करीब एक हजार वर्ष तक रोम साम्राज्य से लोहा लिया था, लेकिन 'अल्लाह की तलवार' ने उसको एक दशक से कम समय में पराजित कर दिया।

'कहीं भी अरब राज्य के अवशेष, उनकी संगठित सेना अथवा समान राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के चिह्न नहीं मिलते हैं। अरब लोग कवि, काल्पनिक, योद्धा और व्यापारी थे, उनमें राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा नहीं थी और न धर्म के आधार पर एकता की शक्ति थी। उन लोगों पर निम्नकोटि के बहुदेववाद का प्रभाव था। ...एक

सौ वर्षों के बाद ये असभ्य समझे जाने वाले संसार की महान् शक्ति बन गये। उन्होंने सीरिया और मिस्र को पराजित किया। उन्होंने फारस को रौंद डाला और उसे अपना धर्मावलम्बी बनाया। उन्होंने पश्चिमी तुर्किस्तान पर अपना प्रभुत्व जमाया और पंजाब के एक हिस्से को अपने अधीन कर लिया। उन्होंने बेजेन्टाइन और बर्बर साम्राज्यों से अफ्रीका को छीन लिया, विशीगोथ नरेशों से स्पेन ले लिया। पश्चिम में उन्होंने फ्रांस के लिए खतरा खड़ा कर दिया और पूर्व में कुस्तुनतुनिया के लिए वे खतरा बन गये। उन्होंने सिकन्दरिया और सीरिया के बन्दरगाहों में अपनी नौसेना बनायी, जिसने भूमध्यसागर में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। यूनान के द्वीपों को उन्होंने लूटा और बैजेन्टाइन साम्राज्य की नौसेना को चुनौती दी। उन्होंने आसानी से अपनी विजय प्राप्त की। केवल फारस के लोगों और एटलस पर्वतों के बर्बर लोगों ने उनका कड़ा प्रतिरोध किया। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में यह खुला प्रश्न था कि क्या कोई अन्य शक्ति उनकी विजय में बाधक बन सकती है। भूमध्यसागर की स्थिति रोम साम्राज्य की एक झील की नहीं रह गयी। यूरोप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक के ईसाई राज्य पूर्व की नयी सभ्यता और पूर्व के नये धर्म की चुनौतियों के खतरे का सामना कर रहे थे।'

(एच. ए. एल. फिशर—ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप, पृष्ठ 137-38)

यह महान् रहस्य कैसे हुआ ? यह प्रश्न इतिहासकारों को आश्चर्य में डाले हुए है। आज के शिक्षित जगत् ने इस गलत बात को अस्वीकार कर दिया है कि इस्लाम का उदय कट्टरवाद की गम्भीर और सहनशील लोगों पर विजय है। इस्लाम की सफलता का क्रान्तिकारी महत्त्व है। उसकी सफलता उसकी इस क्षमता में निहित

है कि वह संकटों से जनता को मुक्त कर सकती है, जो संकट पुराने यूनानी और रोम सभ्यताओं से उत्पन्न हुए थे और फारस, चीन तथा भारत की सभ्यताओं में वे संकट उत्पन्न हो चुके थे।

इस्लाम का लक्ष्य

इस्लामी इतिहास के भ्रष्ट व्याख्याकारों ने इस्लाम के अनुयायियों की सैनिक सफलताओं पर उसकी प्रशंसा के रूप में जोर दिया है अथवा उन्होंने उसके क्रांतिकारी प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से ऐसा किया है। यदि सरासेनी योद्धाओं की उत्कृष्ट सैनिक विजय से इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका का अनुमान लगाना हो तो उनको अनुपम ऐतिहासिक घटना नहीं कहा जा सकता। तातारी और सीथियाई बर्बर लोगों की, जिनमें गोथ, हूण, वनडल, अवार, मंगोल आदि शामिल है, सैनिक विजय इस्लाम के अनुयायियों की सैनिक विजयों के यदि बराबर अथवा उनसे अच्छी नहीं थी तो भी महान् उपलब्धियां थीं। लेकिन यूरोप और एशिया के सीमावर्ती क्षेत्रों से जिस प्रकार की मानव समूह की लहरों ने पश्चिम, दक्षिण और पूर्व के देशों को रौंद डाला था, उनकी तुलना में अरब लोगों का धार्मिक उन्माद अनुपम था। मानव समूहों की पहले की लहरें महान् विजय प्राप्त करने के बाद, देर-सवेर शान्त हो गयीं। लेकिन इनके विपरीत बाद में आने वाला अरब अभियान एक स्थायी ऐतिहासिक घटनाक्रम बन गया जिससे मानव जाति के सांस्कृतिक इतिहास में एक उत्कृष्ट अध्याय जुड़ा। उनके लक्ष्य में विनाश एक गौण बात थी। उस अभियान में पुराने जर्जर खंडहरों को नष्ट किया गया जिससे नवीन निर्माण किया जा सके। उस अभियान ने सीजर और चोसरोज के पवित्र महलों को ध्वस्त किया और उनसे मानव ज्ञान के संचित कोष को विनाश से बचाया और उस ज्ञान भंडार को बढ़ाकर आगे आने वाले लोगों के लाभ के लिए सुरक्षित किया।

सरासेनी अश्वारोही सैनिकों की विजय के उदाहरण ही इस्लाम के चरित्र की विशिष्टताएँ नहीं थीं। उनके द्वारा हमारा ध्यान उनकी ओर आकृष्ट होता है और हमें उनकी ऐतिहासिक विजयों के कारणों को ढूंढ़ने और उनकी प्रशंसा करने को बाध्य करता है। 'अल्लाह की फौज' ने जिस प्रकार की अद्‌भुत विजय प्राप्त की उससे आँखें चकाचौंध हो जाती हैं और इतिहास के औसत छात्र इस्लामी क्रांति की महान् उपलब्धियों को ठीक से नहीं समझ पाते हैं, चाहे वे हजरत मुहम्मद के अनुयायी ही क्यों न हों। फिर भी अरब के मसीहा हजरत मुहम्मद के अनुयायियों ने जो सैनिक विजय प्राप्त की वे तो महान् और स्थायी सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र के परिवर्तनों की भूमिका मात्र थीं। उन विजयों से राजनीतिक एकता की स्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनसे आर्थिक समृद्धि और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ। रोम और फारस के साम्राज्यों के पतन के बाद उनके खण्डहरों को साफ करने से नवीन विचारों और उद्देश्यों वाली सामाजिक व्यवस्था के लिए रास्ता साफ हुआ। मैगियाई रहस्यवाद के अंधकारपूर्ण मूढ़ विश्वासों और यूनानी ईसाई चर्च (सम्प्रदाय) ने अपने अधीन लोगों के आध्यात्मिक जीवन को भ्रष्ट कर दिया था। फारस और बैजेन्टाइन साम्राज्यों के अन्तर्गत सभी नैतिक और बौद्धिक प्रगति असम्भव हो गयी थी। हजरत मुहम्मद के कठोर एकेश्वरवाद ने सरासेनी लोगों को वह शक्ति प्रदान की जिसके द्वारा अरब जनजातियों में व्याप्त मूर्तिपूजा और बहुदेववाद को समाप्त किया। इसके साथ ही वह जोरोस्टर और ईसाई धर्म के पतन से उत्पन्न दुर्भावनाओं के विरुद्ध अजेय अस्त्र भी साबित हुआ। पतनोन्मुख ईसाई सम्प्रदायों में मूढ़ विश्वासों और मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रभाव तथा सन्तों की मूर्तियों की पूजा के

कारण उनका पतन हो गया था। सरासेनी योद्धाओं के शस्त्रास्त्र अपने शत्रु के लिए अजेय सिद्ध नहीं हुए वरन् मानव जाति की प्रगति और इतिहास क्रम के विकास के लिए उनकी उपलब्धियों का महान् योगदान हुआ।

रोम साम्राज्य के अन्तर्गत प्राचीन यूनान की गौरवमयी सभ्यता की समृद्ध आध्यात्मिक परम्परा दबी पड़ी थी और वह ईसाई मूढ़ विश्वासों के अंधकार में नष्ट हो गयी थीं। सरासेनी योद्धाओं की विजय और उनकी उपलब्धियों से यूनान की प्राचीन सभ्यता और उनके दार्शनिक विचारों का उद्धार हुआ जिससे यूरोप के लोगों का मध्ययुगीन निराशा से भी उद्धार हुआ और आधुनिक सभ्यता के उत्कृष्ट भवनों का निर्माण सम्भव हो सका। इस्लाम के एकेश्वरवाद के आधार पर नवीन सामाजिक-राजनीतिक ढांचे का निर्माण सम्भव हुआ। इस्लाम की तलवार ने प्रकटतः ईश्वर की सेवा की और नवीन सामाजिक शक्ति की विजय का आधार उत्पन्न किया, एक नवीन बौद्धिक जीवन का आरम्भ हुआ, जिसने सभी पुराने धर्मों और विश्वास की कब्रों को तैयार कर दिया।

इस्लाम का उदय एक धार्मिक आन्दोलन की अपेक्षा एक राजनीतिक आन्दोलन के रूप में हुआ। अपने इतिहास के प्रारम्भिक चरणों में उसने अरब के रेगिस्तान में रहने वाली जनजातियों—बद्दुओं में एकता स्थापित की। उस लक्ष्य की प्राप्ति के बाद राजनीतिक और धार्मिक एकता के सिद्धान्त के झण्डे के नीचे रोम साम्राज्य के एशियाई और अफ्रीकी प्रान्तों को लाया गया और उनमें व्याप्त प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को नष्ट किया गया। इसके पहले का विद्रोह भ्रष्ट हो गया था। ईसाई धर्म ने अपना प्रारम्भिक क्रान्तिकारी स्वरूप छोड़ दिया था और वह सामाजिक

विलयन (मठवाद) के सिद्धान्त में फंस गया था और दूसरी ओर पतनोन्मुख साम्राज्यों का पोषक बन गया था। लेकिन सामाजिक संकट लगातार बना रहा और ईसाई धर्म के पतन से वह अधिक गम्भीर हो गया। अरब व्यापारियों के कारवांओं ने नयी आशा और मुक्ति का संदेश दिया, जो भ्रष्ट पतनोन्मुख रोम साम्राज्य के प्रभाव से मुक्त थे और वे अपनी लाभजनक स्थिति से समृद्धिशाली हो गये थे। इस्लाम के विद्रोह ने मानव जाति को पतन के गर्त से बचा लिया।

इस्लाम के इतिहास के प्रसिद्ध आधिकारिक इतिहासकार ओकले ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ सरासिन्स' में हजरत मुहम्मद के लक्ष्य के सम्बन्ध में लिखा है—'उन्हें पूरा अरब राष्ट्र तेजी से विकास के ज्वार की स्थिति में मिला था, जिसमें ज्ञान और शक्ति प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा थी। अरब के जनसाधारण में व्याप्त उत्तेजना ने हजरत मुहम्मद के लक्ष्य को उत्पन्न किया था और कुछ अन्य मसीहाओं को उनके जीवन काल में ही उत्पन्न किया था।'

जो लोग इस्लाम के इतिहास का संक्षेप में यह कहकर उल्लेख करते हैं कि वह धर्मान्ध दस्तों का नाटकीय अभियान था जिसने कुरान और तलवार के विकल्प से लोगों को चकाचौंध कर दिया था और जो 'अल्लाह-अकबर' का नारा लगाते थे, वे यह नहीं जानते अथवा जानकर उसे नजरअंदाज कर देते हैं कि हजरत मुहम्मद के बाद उनके उत्तराधिकारियों ने भौतिक और धार्मिक विजयों में अपने को लगाये रखा, वे लोग भी 'अलारिक, अटीला, जेनसेरिक, चंगेज अथवा तेमूरलंग' की तुलना में अधिक सभ्य और मानवीय गुणों से ओतप्रोत थे। उनमें अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठा और आत्मा की पवित्रता थी। उनकी निष्ठा को अन्धविश्वास से चाहे बल मिला हो

लेकिन उनमें आडम्बर नहीं था। उनका कट्टरपन उदारता और सामान्य ज्ञान से कम कठोर हो गया। उनकी महत्त्वाकांक्षा में व्यक्तिगत स्वार्थ का अभाव था। ईश्वरीय प्रेम उनके लिए अपने लोभ को छिपाने का आवरण नहीं था।

इतिहास में बहुत कम व्यक्ति हैं जो इस्लाम के पहले खलीफा अबूबकर से अधिक भावनावादी, भक्त, ईमानदार और विनम्र हो। उन्होंने 'अल्लाह की फौज' को स्मरणीय आदेश दिया था—'ईमानदार रहो, बेईमान कभी उन्नति नहीं करता। बहादुर बनो, आत्मसमर्पण करने से अच्छा है कि युद्ध में वीरगति प्राप्त करो। दयावान बनो, बूढ़ों, औरतों और बच्चों की कभी हत्या मत करो। फलदार वृक्षों को, अनाज और पशुओं को नष्ट मत करो। दुश्मन को दिये गये अपने वचन का पालन करो। जो लोग संसार से अलग होकर रहते हैं उनको मत सताओ।' अल्लाह की सेना के सेनापतियों ने अपने खलीफा के इन आदेशों का ईमानदारी से पालन किया और सच्चे अनुयायी के रूप में उनका आदर किया।

हर स्थान पर सरासेनी (अरब) आक्रमणकारियों का दबे हुए, प्रताड़ित और बैजेन्टाइन साम्राज्य के भ्रष्टाचार से दुःखी लोगों ने मुक्तिदाता के रूप में स्वागत किया। फ़ारस के निरंकुश शासकों और ईसाई अन्धविश्वासों से पीड़ित लोगों ने भी उनका स्वागत किया। हजरत मुहम्मद की क्रांतिकारी शिक्षाओं का कठोरता से पालन करते हुए उन्होंने अपने खलीफाओं के आदेशों का पालन किया। वे आदेश व्यावहारिक, उदार और सज्जनता से परिपूर्ण थे। सरासेनी आक्रमणकारियों को पराजित लोगों की सहानुभूति और समर्थन मिला। कोई भी विजेता, पराजित लोगों पर अपना स्थायी आधिपत्य तब तक स्थापित नहीं कर सकता जब तक कि पराजित

लोगों का उन्हें सक्रिय सहयोग न मिले और उनमें सहनशीलता न हो।

दूसरे खलीफा हुए उमर, जिनकी अश्वारोही सेना ने फारस के साम्राज्य पर विजय प्राप्त की और एक ओर उनका अधिकार ओक्सस नदी के तट पर था तो दूसरी ओर उन्होंने रोम साम्राज्य के प्रसिद्ध नगर सिकन्दरिया पर कब्जा कर लिया। । उन्होंने स्वयं ऊंट की सवारी से यरुसलम पर अधिकार कर लिया। उनकी सेना का साज-सामान और खाने-पीने का सामान ऊंटों पर लाद कर वहां पहुंचाया गया था। उस समय उनके पास मोटे ऊन का बना हुआ एक तम्बू था, एक बोरे में अनाज और दूसरे बोरे में खजूरें थीं। पानी का एक लकड़ी का बंधना था और एक छोटी मसक में पानी था। इतिहासकार गिबन ने अरब के इस खलीफा की सादगी, निष्ठा, न्यायप्रियता और सत्यनिष्ठा की प्रशंसा की है, जिसने फारस, मैसोपोटामिया, सीरिया, फिलस्तीन और मिस्र पर विजय प्राप्त की थी। उसने लिखा है, 'वह जहां कहीं भी डेरा डालते थे, बिना किसी भेदभाव के लोगों को अपने पास बुलाते थे और उनके साथ नमाज अदा करते थे और उसके बाद अपनी सेना के सैनिकों को अपने ओजपूर्ण भाषण से उत्साहित करते थे। अपने अभियानों और तीर्थ-यात्राओं में वह न्यायपूर्ण प्रशासन करके अपनी सत्ता का प्रयोग करते थे। उन्होंने अरब लोगों में व्याप्त बहुपत्नीवाद की प्रथा को समाप्त किया और अपने अधीन क्षेत्रों से निर्दयता से लूट-खसोट करने की पद्धति समाप्त की। उन्होंने सरासेनी लोगों की विलासिता पर अंकुश लगाया और उनके पास एकत्र कीमती रेशमी वस्त्र लेकर उनके सामने ही उन्हें धूल में फेंक दिया।'

(दि डिक्लाईन एण्ड फाल ऑफ रोमन इम्पायर—गिबन)

खालिद, जिन्हें हजरत मुहम्मद 'अल्लाह की तलवार' के नाम से पुकारते थे, वह अरब सेना के महान् योद्धा थे। उन्होंने अपनी वीरता से अरब को एकछत्र राज्य में परिणत किया और मैसोपोटामिया और सीरिया को इस्लाम के झंडे के नीचे ला दिया और मरते वक्त उनके पास केवल एक घोड़ा, अपने हथियार और एक गुलाम था। उस वीर पुरुष ने अपने यौवनकाल में यह घोषणा की थी कि सीरिया के सुन्दर भोजन और संसार के सुखों के कारण नहीं वरन् धर्म के लिए अपने खुदा और अपने रसूल के लिए मैंने अपना जीवन अर्पण किया है।

(अब्दुल फिदा नामक इतिहासकार द्वारा वर्णित)

मिस्र का विजेता ओमरू अपनी वीरता और शौर्य के साथ-साथ स्वयं कवि था। उसने खलीफा उमर को अपनी रिपोर्ट भेजी, उसमें एक स्थल पर कहा गया है, 'इस देश के पशुपालकों की, जो जमीन की सतह को काला किये हुए हैं, तुलना मेहनती चींटियों के समूह से की जा सकती है और उन लोगों के आलस को उनके मालिकों के कोड़ों से दूर किया जाता है। लेकिन वे लोग, जो सम्पत्ति अथवा धन उत्पन्न करते हैं, उसका बंटवारा मजदूरों और मालिकों के बीच समान रूप से नहीं किया जाता है।' वह दृष्टिकोण अपने समय से बहुत आगे का था। सभी देशों की प्राचीन सभ्यताओं में सामाजिक न्याय का विचार नहीं था। मेहनत करने वाले लोग गुलाम अथवा शूद्र माने जाते थे और वे घृणा के पात्र समझे जाते थे और उनका शोषण किया जाता था। उन लोगों को मानव नहीं माना जाता था। पहले खलीफा ने जिन आर्थिक सिद्धान्तों को अपने निर्देशों में शामिल किया था उनमें अरब व्यापारियों के हितों के आधार पर पुराने सामाजिक विचार में क्रांतिकारी परिवर्तन किया था। उसमें

कहा गया था कि जब मेहनतकश जनता की मेहनत की कमाई उनके पास रहेगी तो उससे व्यापार बढ़ेगा। उसने फरोहाओं और पटोल्मी लोगों के राज्यों की प्रशंसा की थी और उन पर अरब विजय के बाद उन्होंने सेनापतियों को उन असमानताओं को दूर करने का आदेश दिया था जिनसे उसके कवि-हृदय को चोट पहुंची थी। यूनानियों और रोम के शासकों ने सदियों से मिस्र को लूटा था, लेकिन अरबों के आधिपत्य के बाद वहां समृद्धि आयी थी।

इस बात के प्रमाणों का अभाव नहीं है कि जब सरासेनी (अरब) योद्धाओं ने अपनी वीरता से लोगों को पराजित कर उन पर अपना आधिपत्य स्थापित किया तो उस दौर में भी उनका व्यवहार बर्बर हत्यारों और लुटेरों के समान नहीं था, जो अपने आक्रमणों के बाद लूटपाट, औरतों के साथ दुर्व्यवहार, हत्या और विनाश, धर्म के नाम पर किया करते थे। इसके साथ ही उनकी विजयों का दौर थोड़े समय चला और खलीफाओं के संरक्षण, ज्ञान और संस्कृति के प्रसार का लम्बा युग शुरू हुआ और यही बात उनके अधीन स्वतंत्र साम्राज्यों में भी फैली। बगदाद में अब्बासियों की हुकूमत कायम होने के बाद युद्ध काल समाप्त हो गया और बगदाद को शान्ति का नगर बनाया गया जैसा कि एक सौ वर्ष पहले हजरत मुहम्मद ने मदीना शहर को बनाया था। उसके बाद अरब सेनाओं के कार्यकलाप सुरक्षात्मक थे और दूरदराज के राज्यों पर ही उनके आक्रमण होते थे।

सरासेनी (अरब) योद्धाओं का अदम्य उत्साह समय बीतने और समृद्धि पाने के बाद नरम पड़ गया। उन लोगों ने युद्ध के द्वारा धन एकत्र करने के बजाय व्यापार और उद्योग के द्वारा धन अर्जित करना शुरू किया। उन्होंने युद्ध के मैदानों में यश प्राप्त करने के

बजाय विज्ञान और साहित्य के द्वारा यश का अर्जन किया। उन्हें केवल एक-ईश्वर की कट्टर आराधना से ही नहीं वरन् सामाजिक और पारिवारिक जीवन से आनन्द पाने की इच्छा जागृत हुई। अब उनमें युद्ध का उन्माद नहीं रह गया था जिसके लिए सरासेनी अरब योद्धा प्रसिद्ध थे क्योंकि वे संसार में शान्ति स्थापित करने और शान्तिमय संसार की रक्षा में दिलचस्पी लेने लगे थे, जो उनके पूर्वजों ने स्थापित की थी। सरासेनी अरब योद्धाओं के पूर्वज अबूबकर और उमर के झंडों के नीचे एकत्र हुए थे। उन्हें यह विश्वास था कि धर्मयुद्धों में वीरगति पाने पर उन्हें स्वर्ग प्राप्त होगा और विजय प्राप्त करने से उन्हें संसार में धन और संपत्ति मिलेगी। लेकिन उन पूर्वज योद्धाओं की सन्तानों को व्यापार और उद्योग में अधिक सन्तोष मिलता था।

तीन सौ वर्षों की शान्ति, समृद्धि और उन्नति के युग में वीरता के लक्षण में जो कमी आयी थी वह ईसाइयों के कथित धर्मयुद्ध के आक्रमण से पुनः जागृत हुई। जब मुसलमान सैनिकों में मध्य एशिया के बर्बर मंगोल सैनिकों की संख्या सरासेनी अरब सैनिकों से अधिक हो गयी तो मुसलमानों की विजय में लूटपाट, अत्याचार और दमन अधिक होने लगा था। अरब लोगों की विद्वत्ता और संस्कृति शासकों के दरबारों के विलासपूर्ण जीवन के प्रभाव से नष्ट हो गयी और इस्लाम के गौरवपूर्ण आत्माभिमान का क्रान्तिकारी रूप नष्ट हो गया और इस्लाम के नाम पर तुर्क और तातारी सैनिकों के कुकृत्यों का प्रभुत्व हो गया।

इस्लाम के इतिहास को केवल युद्धवाद के रूप में समझना एकदम गलत बात है। हजरत मुहम्मद केवल सरासेनी योद्धाओं के ही रसूल (मसीहा) नहीं थे वरन् वे अरब व्यापारियों के भी रसूल थे।

उनके धर्म का जो नामकरण है उससे उसके लक्ष्य के सम्बन्ध में प्रचलित धारणा का खण्डन होता है। शाब्दिक अर्थ के रूप में इस्लाम का अर्थ 'शान्ति' है : उसका लक्ष्य अल्लाह से शान्ति सम्बन्ध स्थापित करना है और उसकी भावना से एकाकार होना है। इस्लाम ने मूर्तियों में धोखे से ईश्वरीय भावना समझने का खण्डन किया था क्योंकि उनके द्वारा मानव की भक्ति भावना पर एकाधिकार कर लिया गया था। इस्लाम का लक्ष्य अरब एकता स्थापित करके संसार में शान्ति स्थापित करना था। उसके लिए संसार में शान्ति का तात्कालिक महत्त्व था और उसके फल का अधिक महत्त्व था। अरब व्यापारियों के भौतिक हितों के लिए भी यह लाभदायक था क्योंकि शान्ति में ही व्यापार का प्रसार संभव था। शक्तिहीन राज्य और पतित धर्मों से ऐसे कीटाणु फैले थे जिनके कारण निरन्तर विद्रोह और युद्ध होते रहते थे। इन कारणों को समाप्त करना शान्ति के लिए आवश्यक था। हजरत मुहम्मद के धर्म ने अरब में शान्ति स्थापित की और सरासेनी अरब योद्धाओं की वीरता और शौर्य से समरकंद से स्पेन तक अरब साम्राज्य स्थापित हो गया।

जैसे ही अरब लोगों का देश पर आधिपत्य स्थापित हो गया, उसके आर्थिक जीवन में उद्योग और कृषि को प्रोत्साहन दिया गया। इस्लामी राज्य की नीतियों को निर्धारित करने में अरब व्यापारियों की भावना और हितों का प्रभाव था। रोम साम्राज्य और सभी प्राचीन सभ्यता वाले देशों में शासक वर्ग उत्पादक श्रम को हेय दृष्टि से देखते थे और व्यापार तथा उद्योग को भी नीची निगाह से देखते थे। अरब लोगों का दृष्टिकोण इससे भिन्न था। मरुस्थल के घुमन्तू जीवन ने उन्हें श्रम का प्रशंसक बना दिया था और उसे वे स्वतन्त्रता

का स्रोत समझते थे। उनमें व्यापार भी प्रतिष्ठादायक काम माना जाता था और स्वतंत्र व्यक्तियों के लिए उसको सम्मानजनक और लाभदायक माना जाता था। इस प्रकार इस्लामी राज्य-पुरानी व्यवस्थाओं की तुलना में नवीन सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित था। व्यापार और व्यवसाय मुक्त था और उसमें लगे लोगों को राज्य कर्मचारियों—युद्ध, ज्ञान और विज्ञान के कर्मचारियों की भांति ऊंचा स्थान प्राप्त था। बगदाद के खलीफा केवल बड़े व्यापारी ही नहीं थे वरन् वे विद्वान थे और वे स्वयं कुछ ऐसा काम करते थे जिससे वे अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन अर्जित कर सकें। अधिकांश अरब दार्शनिक और विद्वान सम्पन्न व्यापारी परिवारों से आये थे। बुखारा और समरकन्द के राजदरबारों की संस्कृति और नफासत, अफ्रीका के फातमी शासकों की दयालुता और अन्दालूसिया के सुलतानों का वैभव समृद्ध व्यापार से उत्पन्न हुआ था, न कि केवल निरंकुश ढंग से वसूले गये करों से।

कुछ निश्चित परिस्थितियों में व्यापार आध्यात्मिक क्रान्ति का वाहक बन जाता है। अरब व्यापारियों की महत्त्वाकांक्षा ने हजरत मुहम्मद के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इससे अनुप्राणित होकर मरुभूमि के घुमन्तू बद्दुओं ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जो इतिहास के बड़े साम्राज्यों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न था। कुरान के नियमों ने सामाजिक सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई और उससे व्यापार बढ़ा, जिसने एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। व्यापार से मनुष्य का दृष्टिकोण विस्तृत हो जाता है। दूर के देशों की यात्रा और विभिन्न

प्रकार के रीति-रिवाजों को देखने और विभिन्न प्रकार की जातियों के लोगों से मिलने का अवसर मिलता है। इन कारणों से व्यापारी लोग अपने को देश की परिस्थितियों से उत्पन्न मूढ़ आग्रहों और सीमाओं से मुक्त कर लेते हैं। उनमें सहनशीलता, सहानुभूति और समझदारी की क्षमता बढ़ती है जिससे वे दूसरे लोगों की आदतों, विचारों और विश्वासों को समझ सकते हैं। देखने और समझदारी से अनजाने समुद्री मार्गों की यात्राओं में उन्हें सहायता मिलती है। इससे नये देशों में जाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है और आरामदेह विलासिता की भावना खत्म हो जाती है। आलोचना की शक्ति से उनके ज्ञान का प्रसार होता है। अपने व्यापार के गुणों से व्यापारी अमूर्त विचारों को सोचने की क्षमता प्राप्त करता है। उसे अपनी वस्तुओं में ही दिलचस्पी नहीं होती, उसके मस्तिष्क में लाभ की बात रहती है। उसके लिए इस बात की चिन्ता नहीं होती कि उसके ऊंटों अथवा जहाजों में ऊन अथवा अनाज लदा है अथवा उनमें मसाले भरे हैं। उसका हित इन वस्तुओं में न होकर उनसे भिन्न मुनाफे अथवा लाभ में निहित होता है। उसका व्यापार लाभ कमाने का माध्यम है जो उसे सामान की खरीद और बिक्री से मिलता है। वह वस्तुओं की प्रशंसा उनमें निहित मूल्यों के आधार पर नहीं करता वरन् वह यह देखता है कि उनसे उसे कितना मुनाफा होगा।

उसमें नयी और अद्‌भुत वस्तुओं के प्रति सहनशीलता होती है। वह उन्हें समझने की कोशिश करता है और ऐसा करने में उसमें कोई दुर्भावना अथवा पूर्वाग्रह नहीं होता। वह वस्तुओं की परख करता है और अमूर्त रूप में उनके सम्बन्ध में विचार करता है। व्यापारी में ये सभी गुण उसके पेशे के स्वाभाविक गुणों के रूप में उत्पन्न होते हैं और इन्हीं से उसका दार्शनिक दृष्टिकोण विकसित होता है। विभिन्न प्रकार

के लोगों को देखने के बाद जो विभिन्न प्रकार के मूढ़ आग्रहों को धार्मिक भावना के रूप में अपनाते हैं और विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाजों के अनुसार व्यवहार करते हैं और शाश्वत सत्य को अपने दुराग्रहों के कारण नहीं अपनाते, इन सब बातों को देखकर यात्रा करने वाला व्यापारी, लोगों के अज्ञान पर मुस्कुराता है और सभी लोगों के विश्वासों के समान तत्त्वों का सम्मान करता है, जो उनके धार्मिक विश्वासों और उपासना की विविधताओं के आवरण में छिपे रहते हैं।

सरासेनी (अरब) साम्राज्य का व्यापारिक मार्ग, मध्य युग में उन देशों से होकर गुजरता था, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था और वे सरासेनी साम्राज्य के अन्तर्गत एक हो गये थे। चीन से व्यापार का उत्तरी मार्ग, जो कुस्तुनतुनिया से इटली और पश्चिमी यूरोप को जाता था, वह सीथियाई आक्रमणों के कारण सुरक्षित नहीं रह गया था और बैजेन्टाइन साम्राज्य की वित्तीय नीतियों से उन पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता था। अरब लोगों ने सीरिया, मैसोपोटामिया, फारस और ओक्सस नदी के पार के क्षेत्रों को जीत लिया था और चीन के व्यापार मार्ग पर कब्जा कर लिया था। उन्होंने व्यापार मार्ग को अपने साम्राज्य के भीतर उत्तरी अफ्रीका और स्पेन तक शुरू किया, जिससे पश्चिमी यूरोप के बाजारों में उनके मार्गों से सामान पहुंचने लगा। आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत और चीन का सम्पूर्ण व्यापार और दूसरी ओर यूरोप के देशों का व्यापार अरब व्यापारियों द्वारा होता था। हजारों व्यापारी अपने-अपने कारवांओं के द्वारा चीन और भारत से हर प्रकार का कीमती सामान मोरक्को और स्पेन तक पहुंचाते थे। उन लोगों को कहीं भी किसी भी पुरानी सभ्यता वाले देश में परेशान नहीं किया जाता था और न उनसे घृणा की जाती थी। इस सम्बन्ध में यूनान ही एक अपवाद था। सरासेनी (अरब) साम्राज्य में

तो वे लोग शासक वर्ग के माने जाते थे। इसके परिणामस्वरूप ज्ञान और संस्कृति का विकास और प्रसार हुआ क्योंकि सरासेनी साम्राज्य उन दिनों में अत्यन्त समृद्ध था और उसमें दृष्टिकोण विशाल था, उसमें सार्वभौमिकता और अविश्वास की भावना भी व्याप्त थी। सैनिक अभिजात नेतृत्व के अधीन और ईर्ष्यापूर्ण मौलवियों के प्रभाव में मानववादी सिद्धान्त का रूप विकृत हो गया और अन्धविश्वास और कुहासे में छिपे रहस्यवाद का प्रसार होने लगा। संसार के विवेकसम्पन्न सिद्धान्त की खोज में जो दर्शन उत्पन्न हुआ था वह समाज से उत्पन्न हुआ था और उस समाज में व्यापार के अभिजात वर्ग का शासन था। यूनान के आईनोनियन नगर-राज्यों में दर्शन का जन्म हुआ था।

इस्लाम अनिवार्य रूप से इतिहास से उत्पन्न हुआ दर्शन था, जो मानव विकास का वाहक था। उसका विकास एक नये सामाजिक सम्बन्धों के सिद्धान्त के रूप में हुआ था जिसने अन्त में मानव मस्तिष्क को क्रान्तिकारी बनाया। लेकिन जिस प्रकार उसने पुरानी संस्कृतियों को गुलाम बनाया और उनको पद-दलित किया, उसी प्रकार समय बीतने पर उसमें भी पतन हुआ। उसके बाद के सामाजिक विकास के बाद नये आध्यात्मिक नेतृत्व ने उसका स्थान लिया, जो नयी परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था। लेकिन उसने नये सिद्धांतों को विकसित करने में सैद्धान्तिक योगदान किया जो बाद की सामाजिक क्रान्तियों से उत्पन्न हुए। प्रयोगात्मक विज्ञान और विवेक-सम्मत दर्शन ऐसे तत्त्व थे जिनसे नवीन सिद्धान्तों का जन्म हुआ। इस्लाम की संस्कृति को इस बात का श्रेय है कि उसके अन्तर्गत नवीन सामाजिक क्रान्ति को विकसित करने वाले तत्त्व विकसित हुए।

पूंजीवादी उत्पादन के ढंग ने यूरोप को मध्ययुगीन बर्बरवाद की अव्यवस्था से मुक्त किया। उसने लम्बी अवधि तक ईसाई धर्म के

सिद्धान्तों के विरुद्ध संघर्ष किया और अन्त में उन्हें परास्त किया। कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय के आध्यात्मिक एकाधिकार को नष्ट करके विवेक-सम्मत दर्शन का विकास हुआ। इस अस्त्र को प्राचीन यूनानी विचारकों ने ढूंढा था और अरब विद्वानों ने उसे अपनाकर उसे आधुनिक सभ्यता के संस्थापकों को सौंपा। अरब विचारकों ने मानव जाति के पूर्वज विचारकों के विचारों को अधिक समुन्नत करके उन्हें आगे की पीढ़ियों को दिया। इस प्रकार उस ऐतिहासिक संघर्ष ने, जिसे मरुस्थल के घुमन्तू लोगों ने इस्लाम के झंडे के नीचे शुरू किया था और जिसने कदम-कदम पर युद्ध कर हजार वर्षों के दौरान तीन महादेशों में उसे फैलाया, यूरोप में अन्तिम बार विजय प्राप्त की और उसके प्रभाव ने अठारहवीं शताब्दी में नवजागरण और पूंजीवादी क्रान्तियों के नेतृत्व में नये सिद्धान्त को जन्म दिया।

इस्लाम की सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस्लाम—शान्ति का धर्म—की रचना हजरत मुहम्मद ने उसी अर्थ में की जिसमें अन्य धर्मों के संस्थापकों को उनका जन्मदाता कहा जाता है। कोई भी धर्म किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होती और न उसका उदय एकाएक होता है और न किसी दार्शनिक को वह ज्ञान प्रकट होता है। इस्लाम भी अन्य धर्मों की भांति अपने युग की परिस्थितियों और अपने वातावरण से उत्पन्न हुआ था।

यद्यपि अरब देश के किनारे से असीरिया, फारस, मेसीडोनिया और रोम की सेनाएं एक ओर से दूसरी ओर आती-जाती रहीं, लेकिन बड़े अरब प्रायद्वीप के निवासियों ने अपने देश की प्राकृतिक स्थिति के कारण अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखा। अरब प्रायद्वीप की प्रकृति का प्रभाव उनके जीवन पर भी पड़ा। लेकिन उनमें स्वतन्त्रता के लिए उत्कट प्रेम था और वे घुमन्तू जीवन के आदी हो गये थे। अरब मरुस्थल के निवासी अनेक कबीलों में बंट गये थे जो परस्पर एक-दूसरे से लड़ा करते थे।

मानव जाति के अन्य समूहों से अलग रहने के कारण अरब लोग अजनबी को शत्रु मानते थे। देश की गरीबी के कारण उनकी इस भावना को और अधिक बल मिला। इन दो बातों की पृष्ठभूमि में अरब के कानून और नैतिकता का विकास हुआ। उनका विश्वास था कि इस्माइल, जिसको समाज से निष्कासित किया गया था, के वंशजों का मरुस्थल में रहना ही, उनका भाग्य है जबकि मानव जाति के दूसरे

समूहों को उर्वर देशों में रहने का अवसर मिला है। इसके परिणामस्वरूप उन लोगों को यह उचित प्रतीत हुआ कि वे अपने देश मरुस्थल पर सैन्य बल से अधिकार करें, जो उनसे छीन लिया गया था। रोम के इतिहासकार पिलनी ने मुहम्मद के आगमन से 600 वर्ष पूर्व इस बात का पता लगाया था कि अरब लोगों में डाकाजनी और व्यापार, दोनों पेशों को लाभदायक समझा जाता है। इनके अतिरिक्त वे भेड़ और घोड़ों का पालन करते थे। सामाजिक विकास के आरम्भिक दौर में डाकाजनी और व्यापार में विभाजन की एक पतली रेखा थी। व्यापार में सस्ते मूल्य पर वस्तु खरीद कर उसे अधिक मूल्य पर बेचने से मुनाफ़ा मिलता था। जो वस्तु खरीदने में जितना कम मूल्य दे सकता था उसे मुनाफ़ा उतना ही अधिक मिलता था। डाकाजनी और चोरी में वस्तु का सबसे कम मूल्य लगता था। अतः जहां व्यापार के इस मौलिक सिद्धान्त की नैतिकता को स्वीकार कर लिया जाता है और अधिक से अधिक मुनाफा कमाना उचित मान लिया जाता है वहाँ व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण वस्तुओं का मूल्य कम रखा जाता था। प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करने का एक तरीका यह है कि अपने प्रतिस्पर्द्धी के सामान को लूट लिया जाय। इस रणनीति से प्रतिस्पर्द्धी को बाजार से हटाया जा सकता था और उसकी वस्तुओं को अधिक योग्य व्यापारी के द्वारा बाज़ार में पहुंचाया जाता था। इसके साथ ही व्यापारिक मार्गों और बाजारों पर एकाधिकार रखने में भी डाकाजनी से मदद मिलती थी। प्रारम्भिक दौर में सभी स्थानों पर व्यापार इन्हीं व्यावहारिक नीतियों के अनुसार किया जाता था, जिनसे सम्भवतः आधुनिक व्यापारी को धक्का लगेगा। फिर भी डाकाजनी ऐसा उपाय था जिससे उसके कट्टर पूर्वजों ने अपने व्यवसाय को जमाया और उसको सम्मानजनक बनाया। व्यापार में 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति' का सिद्धान्त बाद में अपनाया गया।

डाकाजनी के अतिरिक्त मानव जाति की वहशी तरुणाई के दिनों में युद्ध करने को राजनीतिक गुण माना जाता था और इन गुणों का आदर किया जाता था। अपने देश की भौगोलिक स्थिति के कारण अरब लोगों में डाकाजनी का प्रचलन हुआ और बाद में उसका विकास व्यापार और युद्ध के क्षेत्र में हुआ। उनकी वीरता और युद्धप्रियता ने काल्पनिक कहानियों का रूप ले लिया है। प्रसिद्ध इतिहास कृति 'अयम ऊल अरब' सरासैनी साम्राज्य के उन्नत समय के युद्धों का वर्णन है। उसमें हजरत मुहम्मद के पहले के 1700 युद्धों का उल्लेख है जो अरब लोगों ने लड़े थे। अतः सरासेनी योद्धाओं का युद्ध कौशल उन्हें इस्लाम धर्म से प्राप्त नहीं हुआ था। 'अल्लाह की फौज' में शामिल होने से पहले भी वे योद्धा थे। अरब योद्धाओं की विजयों का श्रेय हजरत मुहम्मद की इस्लाम की शिक्षाओं को उतना नहीं है जितना उस देश की तत्कालीन परिस्थितियों को है।

हजरत मुहम्मद के पहले अरब लोगों में जो युद्ध हुए उनमें अधिकांश उन कबीलों की अन्त:कलह के कारण हुए और उन्हें बर्बरता से लड़ा गया था, लेकिन उनमें भी सम्मान, शौर्य और अभिजात्य के गुणों पर जोर दिया जाता था। अत्यधिक रक्तपात से भी अरब देश की भूमि को उर्वर नहीं बनाया जा सका था, लेकिन उनका यह प्रभाव पड़ा कि आरम्भिक अरब लोगों की डाकाजनी और व्यापार को लोगों ने अच्छा समझना छोड़ दिया। उस समय की आर्थिक आवश्यकता इस बात की थी कि पारस्परिक विनाशकारी युद्धों के घमंड को छोड़ा जाय और परम्परागत सरासेनी योद्धाओं की वीरता को अधिक लाभदायक कार्यों में लगाया जाय। इस आवश्यकता से उत्पन्न विचार ने हजरत मुहम्मद के धर्म का रूप ग्रहण किया।

अरब देश स्वतः बड़ा मरुस्थल है, लेकिन उसके तीन ओर घनी आबादियों के देश हैं, जिनमें प्राचीन सभ्यताओं का विकास हुआ था और जहाँ अनादिकाल से उद्योग और कृषि की समृद्धि थी। अरब के दक्षिण में समुद्र है जिससे होकर भारत से व्यापार होता था। भौगोलिक स्थिति के कारण अरब में व्यापारिक कारवां मार्ग थे, जिनसे भारत, फारस, असीरिया, सीरिया, फिलस्तीन, मिस्र और अबीसीनिया के लिए व्यापार होता था। आरम्भ में अरब प्रायद्वीप के दक्षिणी और उत्तरी भाग में अफ्रीका और एशिया के व्यापारिक मार्ग मिलते थे। उन रास्तों से अरब के रेतीले मरुस्थल के भीतरी भागों को जानने का प्रयास नहीं किया गया। लेकिन बैजेन्टाइन साम्राज्य के निरंकुश करों की वसूली और स्थानीय अधिकारियों की लूट-खसोट के कारण व्यापारियों ने अधिक भयंकर लेकिन अपने घरों में उदार व्यवहार करने वाले बद्दुओं के क्षेत्र से गुजरना पसन्द किया।

आरम्भ में लोग अपने विशेष कानूनों और नैतिकता के अनुसार शुल्क वसूल करते थे। लेकिन समय बीतने पर उन्हें मालूम हुआ कि डाकाजनी से अधिक लाभप्रद व्यापार करना है। सभी अरब कबीलों में कुरैश कबीले के लोगों ने उपद्रवी व्यवहार छोड़कर शान्तिपूर्ण और लाभदायक पेशे को अपनाया। वे लोग ज्यादातर लालसागर के तटवर्ती क्षेत्र में रहते थे और अबीसीनिया के साथ होने वाले व्यापार पर उनका अधिकार हो गया। उसके बाद एशियाई व्यापार मार्गों पर उनका अधिकार हो गया। ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में कुरैश कबीले की राजधानी मक्का में थी और वहाँ दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम वाले व्यापार मार्ग मिलते थे। अरब सागर के तट पर यमन में कुरैश कबीले के लोग

आने वाली वस्तुओं को अपने कारवांओं में लेते थे और अदन में अबीसीनिया से आने वाली अफ्रीकी बहुमूल्य वस्तुओं को प्राप्त करते थे। उत्तर ओर की यात्रा में उनके कारवां दमिश्क की गुलजार मंडियों में रुकते थे। वहां से वे अनाज और उत्पादित वस्तुएं लेते थे और उनके बदले में इत्र, मोती, जवाहरात और हाथी-दाँत आदि वस्तुओं को बेचते थे। उनके व्यापार के लाभ से मक्का के रास्तों में समृद्धि दिखायी देती थी। बाद में जब पूर्व और पश्चिम का व्यापार भी मक्का होकर गुजरने लगा तो कुरैश कबीलों की समृद्धि बढ़ गयी और उनसे उनकी महत्त्वाकांक्षाओं की वृद्धि हुई।

लेकिन अरब लोगों के दूसरे कबीले उनकी स्वतन्त्रता और समृद्धि से ईर्ष्यालु हो गए। वे अपनी परम्पराओं के अनुसार ही कानूनों और नैतिकता का व्यवहार करते थे और इस बात की चिन्ता नहीं करते थे कि वे कैसे उत्पन्न हुए थे। उनके आक्रमणकारी और सुरक्षात्मक कार्यों ने अभिजात आचरण का रूप ले लिया। पुराने ढंग की डाकाजनी का, जिसके शिकार अजनबी लोग होते थे, नये राष्ट्रीय व्यवसाय और व्यापार पर घातक प्रभाव पड़ता था। उस दशा में आगे के राजनीतिक विकास के लिए यह अनिवार्य शर्त हो गयी कि कबीलों के युद्धों को समाप्त किया जाय। ऐतिहासिक घटनाओं की नियति के रूप में एकता की स्थापना आवश्यक हो गयी जिससे ऐतिहासिक लक्ष्य को पाने के लिए आर्थिक शक्तियों को नियमित किया जा सके। इस दृष्टि से कुरैश कबीले का इतिहास ने चुनाव किया।

अरब कबीलों में निरन्तर युद्ध के बीच में वे सभी मक्का के निकट काबा के मन्दिर में पूजापाठ और बलिदान करते थे। कुरैश लोगों ने राष्ट्रीय तीर्थ पर कब्जा कर लिया था और उस पूजा-स्थल पर

हाशमी लोगों का अधिकार हो गया था जो उस कबीले का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कुटुम्ब था। इसी कारण हाशमी लोगों को राष्ट्रीय सम्मान और आदर प्राप्त था, जो व्यापार में प्राप्त लाभ के अतिरिक्त था। इस परिस्थिति में हाशमी लोगों ने अरब कबीलों की एकता का आह्वान किया और एक नये धर्म का उदय हुआ, जिसने सभी देवताओं को हटा कर उसके स्थान पर एक—ईश्वर को आराधना का केन्द्र माना।

हजरत मुहम्मद के कठोर एकेश्वरवाद में उस एकता की अभिलाषा ने मूर्त रूप ग्रहण किया। इसके आधार पर उनके पारस्परिक झगड़े खत्म हुए और उन पड़ोसी राष्ट्रों में स्वागत हुआ जहां कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय की असहनशीलता से लोग परेशान थे। फारस, मैसोपोटामियां, सीरिया, फिलस्तीन और मिस्र में मैगाई रहस्यवादियों, यहूदी अनुदारवादियों और ईसाई धर्मान्धता से धार्मिक रूप से अस्पष्टता और गड़बड़ी व्याप्त थी। कठोर रीति-रिवाजों ने धर्म का स्थान ग्रहण कर लिया था। आडम्बरपूर्ण धार्मिक व्यवहार के कारण भक्ति खत्म हो गयी थी। कट्टर धार्मिकता से विश्वास नष्ट हो गया था और ईश्वर देवदूतों, सन्तों और महन्तों की भीड़ में खो गया था। नये धर्म का नारा था 'केवल एक-ईश्वर है।' इस विश्वास को सहनशीलता से कोमल बना दिया गया था। पीड़ित जनसमूहों ने इस नये धर्म का उत्साहपूर्ण ढंग से स्वागत किया और बौद्धिक दीवालियेपन तथा आध्यात्मिक अव्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक विघटन के समुद्र में उसने उद्धार करने वाले जहाज का काम किया। एक-ईश्वरवाद की ऐतिहासिक घोषणा को अरब के कारवां व्यापारियों ने जारी किया जो युद्ध और विश्वासों के विनाशकारी द्वन्द्व से अलग थे और आर्थिक रूप से

सम्पन्न थे और जिनमें अदम्य आध्यात्मिक उत्साह था जबकि उनके पुराने और अधिक सभ्य पड़ोसी देशों में यथास्थिति, पतन और विघटन का संकट उत्पन्न हो गया। एक-ईश्वर में विश्वास के सुदृढ़ प्रचार ने सैनिक राज्य के लिए आधारभूमि तैयार कर दी जिसमें धार्मिक, नागरिक, न्यायिक और प्रशासन सभी कार्यों को एक संगठन के भीतर संगठित किया गया। सरासेनी योद्धाओं के इस एकतावाद ने नवीन सामाजिक व्यवस्था की नींव रखी जो प्राचीन सभ्यताओं के खण्डहरों के विनाश के बाद महान् रूप से सामने आयी। इस प्रकार के धर्म का आकर्षण उन लोगों के लिए अधिक था जो धार्मिक मतभेदों के कारण पीड़ित थे। नये धर्म ने आत्मा की स्वतंत्रता पर जोर दिया और उसे मानने वालों को समान रूप से संरक्षण प्रदान किया। इस्लाम का उदय धार्मिक दमन के विरुद्ध पीड़ित लोगों के संरक्षण के रूप में हुआ।

सहनशील स्वभाव, विश्वव्यापी भावना और लोकतांत्रिक नीति तथा इस्लाम धर्म के एक-ईश्वरवाद के सिद्धांत अरब देश की भौगोलिक स्थिति की देन थी। उसके चारों ओर वहां के स्थानीय निवासियों का निरंकुशता से दमन होता था और विदेशी आक्रमणों से उनकी लूटपाट होती थी लेकिन अरब के लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की थी। मिस्र और फारस में जिन लोगों का दमन होता था और ईसाई सम्प्रदायों के दमन के जो शिकार थे वे भाग कर शरण लेने के लिए अरब क्षेत्र में जाते थे और वहां अपने विश्वासों के अनुसार आचरण करने की उन्हें स्वतंत्रता थी। जब असीरियाई साम्राज्य पर फारस की विजय हो गई तो बेबीलोन के बलिदान स्थलों पर मैगी लोगों का अधिकार हो गया और प्राचीन सबीयन पुजारी अपने प्राचीन विश्वास और ज्योतिष के ज्ञान के साथ अरब क्षेत्र में सुरक्षा

के लिए चले गये। इसके पहले असीरियाई आक्रमणकारियों से बचने के लिए इस्राईल की सन्तानों ने अरब में शरण ली थी। स्वयं ईसा मसीह, जॉन दी बैपटिस्ट तक ने अरब के रेगिस्तान में जीवन बिताया और वहीं साधना की तथा अपने विचारों का प्रचार किया। सिकन्दर के आक्रमण ने असीरियाई लोगों पर हुए आक्रमण का बदला लिया। उस समय जोरोस्टर के कट्टर अनुयायी भी जो अपने विश्वासों को यूनानी धार्मिक अन्धविश्वासों से बचाना चाहते थे और जो उनकी पवित्रता की रक्षा करना चाहते थे, अरब रेगिस्तान के स्वतंत्र वातावरण में गये और वहां उन्होंने बेबीलोन के अपने विरोधियों से सहयोग किया।

पूर्व के रहस्यवादी धार्मिक मतवादों—प्रत्यक्षज्ञानवादियों और प्रत्यक्ष ज्ञानवादियों के मिश्रित विचारों और यूनानी अध्यात्मवाद तथा ईसाई धार्मिक कथाओं, सभी का प्रचलन अरब के रेगिस्तान में स्वतंत्रतापूर्वक हुआ। अन्त में कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय के लोग भी, जो नस्टोरियाई जैकोबाईट और यूरीचियन विचारों के मतभेदों को मानते थे, यूनानी ईसाई सम्प्रदाय की धर्मान्धता से बचने के लिए और अपने विश्वासों को सादगी से मानने के लिए अरब क्षेत्र में पहुंचे थे। विभिन्न धार्मिक विश्वासों के लोगों ने अरब क्षेत्र में प्राप्त स्वतंत्रता के कारण एक-दूसरे के मतवादों को समझने की कोशिश की और उन्हें यह देखने का अवसर मिला कि उनमें कौन-सी बात समान थी। सहनशीलता के शान्त वातावरण में उनके विचारों में परस्पर मतभेद खत्म हुए और एक-दूसरे के प्रति कठोर रवैया अपनाने की भावना दूर हुई और उन लोगों के उपदेशों की समान भावनाओं का प्रभाव बद्दुओं पर भी हुआ। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि मरुस्थल के असभ्य समझे जाने वाले लोगों को प्राचीन धर्मों की सब अच्छाइयों का उत्तराधिकार मिला और उनमें

एक-ईश्वर में निष्ठा और विश्वास की भावना सुदृढ़ हो गयी। ईश्वर अथवा अल्लाह महान् है, वह स्वर्ग और पृथ्वी पर सर्वशक्तिमान है और उसने मानव जाति के कल्याण के लिए समय-समय पर अपनी सत्ता मसीहाओं के द्वारा प्रकट की है। इस्लाम का यही सार तत्त्व है, जो अरब जाति की आध्यात्मिक चेतना के रूप में हजरत मुहम्मद से पहले से व्याप्त थी और उसी आधार पर हजरत मुहम्मद ने अपने नये धर्म की आधारशिला रखी थी। इस्लाम की भावना की खोज हजरत मुहम्मद ने नहीं की थी और न उन्हें उसका ईश्वरीय आदेश प्राप्त हुआ था। वह इतिहास का ऐसा उत्तराधिकार था जो अरब राष्ट्र को प्राप्त हुआ था। हजरत मुहम्मद की महानता और उनकी योग्यता इस बात में थी कि उन्होंने उस उत्तराधिकार के महत्त्व को समझा और अपने देशवासियों को उसके प्रति सचेत किया।

अरब लोगों को सर्वशक्तिमान एक-ईश्वर की भावना प्राप्त हो चुकी थी, लेकिन अपनी आदतों और अपने-अपने कबीलों के हितों के कारण वे बहुदेववाद के अनुसार देवताओं की पूजा करते थे। पुराने धर्मों के सार्थक निष्कर्षों के आधार पर उन्हें इतिहास का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ और उसके कारण ही उन्होंने परम्परागत बहुदेववादी पूजा-आराधना में परिवर्तन किया था। इस उद्देश्य के लिए महान् प्रयास की आवश्यकता थी और मक्का उसका केन्द्र बिन्दु था जहां पर पुराने विश्वासों पर आक्रमण करने की आवश्यकता थी।

अरब कबीलों में व्याप्त स्वतन्त्रता की भावना और पारस्परिक विनाशकारी युद्धों में लिप्त कबीलों ने मक्का में अपने झगड़ों को सुलझाया और आपस में सुलह की। सभी व्यापार मार्ग वहां मिलते थे। विकेन्द्रित अरब कबीलों के आर्थिक हितों की एकता ने उनमें आध्यात्मिक एकता मक्का में स्थापित की। सभी अरब कबीले मक्का

पहुंचने पर काबा में आराधना करते थे। उनमें से प्रत्येक के अपने विश्वास के अनुसार अलग-अलग प्रतीक थे। काबा के मन्दिर में तीन सौ साठ मूर्तियां, जिनमें मानव, पक्षी और शेर आदि की मूर्तियां थीं। लेकिन कुरैश कबीला सबसे समृद्ध था और हाशमी कुनबे के लोगों का काबा के मन्दिर पर अधिकार था। यह स्वाभाविक था कि नये विश्वास की नवीन भावना को, जिससे आर्थिक हितों के आधार पर राष्ट्रीय एकता बढ़ सकती थी, राष्ट्र के हृदय-स्थल मक्का और काबा में सजग रूप से स्थापित किया जाय। इसी आधार पर हाशमी कुटुम्ब के लोगों ने नये धर्म का उपदेश करना शुरू किया।

एक बार जब हाशमी कुनबा और कुरैश कबीले ने नये धर्म को स्वीकार कर लिया तो अरब के सभी कबीलों ने भी उसका पालन किया। जिन लोगों का मक्का के व्यापार पर नियंत्रण था वे पूरे अरब राष्ट्र के लोगों में नये धर्म और विश्वास का आसानी से प्रचार कर सकते थे। लेकिन अपने अन्धविश्वासों के कारण कुरैश लोगों ने अपनी जाति के लोगों का दमन करना शुरू किया। उन्हें इस बात की भी आशंका थी कि काबा के मंदिर में गड़बड़ी करने से मक्का से व्यापारिक केन्द्र हट जायेगा। मदीना ने हजरत मुहम्मद द्वारा प्रचारित धर्म का समर्थन किया और एकता के लिए उनके आह्वान का दूसरे क्षेत्रों में भी प्रभाव पड़ा। एक के बाद एक परिवार कुरैश अनुदारवाद से अलग होने लगे और उन लोगों ने क्रान्तिकारी हाशमी लोगों का समर्थन करना शुरू किया। कुछ समय बाद ही कुरैश लोगों ने अपने निष्कासित बिरादरी के लोगों के सामने समर्पण कर दिया और उसके बाद इस्लाम के मसीहा और सिपहसालार के झंडे पर उन्हीं का अधिकार हो गया।

हजरत मुहम्मद के अनुयायियों द्वारा मक्का पर अधिकार करते ही यह हुक्म जारी किया गया कि मक्का के पवित्र नगर पर किसी अविश्वासी व्यक्ति को आने न दिया जाय। नये धर्म को पूरे अरब राष्ट्र पर लागू किया गया और उसका मुख्य हथियार आर्थिक असहयोग का भय था। काबा के मन्दिर से सभी मूर्तियां हटा दी गयीं और उसे हजरत मुहम्मद के खुदा अथवा अल्लाह का एकमात्र पूजा-स्थल बना दिया गया। एक बार नये धर्म के झंडे के फहराये जाने के बाद पूरी अरब जाति उसके नीचे जमा हो गयी। यह उल्लेखनीय है कि नये धर्म की घोषणा से पहले ही अरब लोगों के दिमाग में अचेतन रूप से उसका प्रभाव पड़ चुका था। उनके आर्थिक हितों के कारण ही नये धर्म की स्थापना आवश्यक हो गयी थी।

विजय के कारण

जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक परिस्थितियों में इस्लाम का जन्म हुआ, उनके कारण उस पर सहनशीलता की छाप थी। जो लोग उसकी कट्टरता की परम्परा को देखते हैं उनकी निगाह में इस बात पर विश्वास नहीं होगा। लेकिन उसमें कोई विरोधाभास नहीं है। इस्लाम का मूल सिद्धान्त है—'सत्ता केवल एक-ईश्वर (अल्लाह) की है' इसमें ही सहनशीलता की भावना निहित है। जब समस्त संसार, समूची मानव जाति अपनी विकृतियों और बुराइयों के साथ, अपनी सभी प्रकार की कमजोरियों के साथ अल्लाह की सृष्टि है तो उसमें विश्वास करने वाला बन्दा, मानव जाति की बेहूदी कमजोरियों और भ्रष्ट विश्वासों पर हँस सकता है, लेकिन अपने धार्मिक विश्वास के कारण उन पर यह आरोप नहीं लगा सकता कि उनके कार्य अथवा पूजा पद्धति किसी शैतान की कृति है और इस आधार पर उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की जा सकती। जो लोग भिन्न ढंग से ईश्वर की पूजा आराधना करते हैं वे उनकी निगाह में गलत और पथभ्रष्ट हो सकते हैं, लेकिन वे इसी ईश्वर (अल्लाह) की सन्तानें हैं। उनको सही रास्ते पर लाया जाना चाहिए और उनके प्रति तब तक सहनशीलता का व्यवहार किया जाना चाहिए जब तक कि उन्हें सही रास्ते पर न लाया जा सके।

अरब के मसीहा हजरत मुहम्मद के कथित उपदेशों में कुरान और तलवार का जो भयानक दृश्य रखा जाता है उसकी छाया इस्लाम के उदय के इतिहास पर पड़ती है और उसमें तीसरे विकल्प की बात

मिली रहती है और उसे स्वीकार भी किया जाता है। इस्लाम की विजय का वह कारण था। वास्तव में विकल्प भिन्न-भिन्न रूप में रखे गये। एक विकल्प था कि या तो कुरान पर विश्वास लाओ अथवा सरासेनी विजेता को शुल्क अदा करो। 'अल्लाह की तलवार' तब खून से रंगी जाती थी जब उक्त दोनों विकल्पों में से किसी को स्वीकार नहीं किया जाता था। अरब व्यापारियों के आर्थिक हित, जिन्होंने एक-ईश्वरवाद के इस्लाम के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, अन्धाधुन्ध रक्तपात करने के विरोधी थे। उनका लक्ष्य व्यापार मार्गों को जीत कर उन्हें अपने अधिकार में लेना था और उन पर एकात्मक राज्य स्थापित करना था। इस लक्ष्य को और भी अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता था, यदि लोग उनके नये धर्म को स्वीकार कर लेते, उस दशा में नये एकात्मक राज्य की नींव अधिक मजबूत हो जाती। लेकिन व्यापार की अनिवार्य आवश्यकता है कि वस्तुओं का उत्पादन और उपभोग की प्रक्रिया जारी रहे। इसलिए इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका कारीगरों और किसानों के सामूहिक नरसंहार से मेल नहीं खाती थी। इसी भांति कुरान को स्वीकार न करने वाले शहरों को बर्बाद नहीं किया जा सकता था। उस समय इस बात को आवश्यक माना गया कि लोग नये कार्य को स्वीकार करें। हजरत मुहम्मद को रसूल के सैनिकों का आधिपत्य मान लेने पर अविश्वासी लोगों को अपने धर्मों और विश्वासों और विरोधी पूजा-आराधना करने की छूट मिल जाती थी।

जब खलीफा उमर ने यरुसलम पर अधिकार कर लिया तो वहां के नागरिकों की सम्पत्ति को उनके पास छोड़ दिया गया और उन्हें आराधना की छूट दी गयी। नगर के एक भाग में ईसाइयों को अपने पादरी के साथ रहने की इजाजत दी गयी। ऐसा संरक्षण देने के लिए उन पर पूरी बस्ती के लिए दो सोने के सिक्के का शुल्क

लौटाया गया। मुसलमान विजेताओं के अधिकार के बाद यरुसलम में ईसाई तीर्थयात्रियों का आवागमन बढ़ा क्योंकि उससे व्यापारिक आवागमन को भी प्रोत्साहन मिला था। चार सौ आठ वर्ष बाद यूरोप के ईसाई धर्म योद्धाओं ने यरुसलम को मुसलमान विजेताओं से मुक्त करा लिया : 'प्राच्य ईसाइयों ने अरब खलीफाओं की सहनशीलतापूर्ण सरकार के प्रति खेद व्यक्त किया।'

(दि डिक्लाईन एण्ड फाल ऑफ रोमन इम्पायर)

मुसलमानों की सहनशीलता के विपरीत यूरोप के ईसाई धर्मयोद्धाओं के अधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण अधिक चमकदार है। 'यरुसलम में नागरिकों और सार्वजनिक धन और सम्पत्ति को लूटने वाले व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति मान लिया गया। ईसाइयों के ईश्वर में विश्वास रखने वाले नागरिकों का गलती से नरसंहार किया गया। जिन लोगों ने प्रतिरोध में सिर उठाया उन्हें स्त्री-पुरुष के भेदभाव के बिना तलवार के घाट उतार दिया गया। वहां तीन दिन तक लगातार नरसंहार होता रहा। सत्तर हजार मुसलमानों की हत्या के बाद यहूदियों ने उनकी सम्पत्ति को जला दिया, जिसे मुसलमानों के अधीन जमा रखने की उन्हें छूट मिली हुई थी।'

(दि डिक्लाईन एण्ड फाल ऑफ रोमन इम्पायर)

सभी आधिकारिक इतिहासकारों—ईसाई और मुसलमानों—तात्कालिक और आधुनिक सभी के प्रमाणों के आधार पर गिबन ने अन्तिम रूप से यह सिद्ध किया है कि 'मुहम्मद ने अपने अधीन ईसाई लोगों को व्यक्तिगत संरक्षण प्रदान किया और उनके व्यवसाय और सम्पत्ति की रक्षा की तथा उन्हें अपने धर्म के अनुसार आराधना करने की स्वतंत्रता प्रदान की थी। सहनशीलता के इस सिद्धान्त को हजरत मुहम्मद के उत्तराधिकारियों ने अरबों के उत्कर्ष काल में

अपनाये रखा। इसको उस समय छोड़ा गया जब इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका का दौर खत्म हो गया और उसका नेतृत्व अरब के सरासेनी योद्धाओं के स्थान पर बर्बर तातारी लोगों के हाथ में पहुंच गया। पहले तुर्की सुलतान के समय भी सहनशीलता की भावना को एकदम नहीं छोड़ा गया था।

अपने गौरवशाली काल में इस्लाम की सहनशीलता की भावना का विकास विचार और विवेक की स्वतन्त्रता के रूप में हुआ। लेकिन उसे कट्टरवादी दृष्टिकोण से विरोधी मतवादों और अधार्मिक तत्त्वों के रूप में पतन ही कहा जाता था। बगदाद के अधिकांश अब्बासी खलीफाओं ने विज्ञान के अध्ययन और विचारों की स्वतंत्रता पर जोर दिया। उनमें से कुछ उदाहरण के रूप में मोत्तासिने तो कुरान की उत्पत्ति को ईश्वरीय भी नहीं मानता था।

शताब्दियों तक सरासेनी साम्राज्य में यहूदियों और उदार ईसाई सम्प्रदाय ने स्टोरियन, जैकोबाईट, यूरीशियन और पालीशियन लोगों को शरण दी। सरासेनी विजय के बाद तो कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों के प्रति भी सहनशीलता का व्यवहार किया। अनेक ईसाई इतिहासकारों ने उसका उल्लेख किया हैं। प्रसिद्ध ईसाई इतिहासकार 'रेनादोत' का उदाहरण है। उसने लिखा है कि 'मिस्र में मुसलमान नागरिक प्रशासकों ने ईसाई धर्माध्यक्षों, पादरियों और उपदेशकों को सुरक्षा प्रदान की और अपने घरेलू मामलों के प्रबन्ध की छूट दी, शिक्षित ईसाई लोगों को सचिवों और हकीमों के रूप में नौकरियां दी गयीं। उन्हें राजस्व वसूली के काम में लगाया गया जिससे उन्होंने काफी सम्पत्ति अर्जित की और कभी-कभी तो उन्हें नगरों और सूबों का सेना अधिकारी भी बनाया गया। बगदाद के एक खलीफा ने यह घोषणा की कि फारस के प्रशासन में ईसाई अधिक भरोसेमंद हैं। सरासेनी साम्राज्य में पालिशियन ईसाइयों को, जो प्रोटेस्टेन्ट

सुधारवादियों के पूर्वज कहे जा सकते हैं, आराधना की स्वतन्त्रता थी और उनके खलीफाओं की ओर से कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय को सुधारने और ईसाई धर्म को उसके आरम्भिक रूप में सुधारने के लिए सहायता प्रदान की गयी।'

प्राचीन जोरोस्टर धर्म में अच्छाई और बुराई की द्वैध के सिद्धान्त को शाश्वत रूप में माना जाता था। एक-ईश्वरवाद को मानने वाले लोगों के लिए वह विचार हेय था। फिर भी मैगाई धर्म के विश्वासों के प्रति विजयी अरब लोगों ने सहनशीलता दिखायी। हिजरी की तीसरी सदी तक अग्नि का विशाल मन्दिर खड़ा था और उसके समीप एक छोटी मस्जिद थी। प्राचीन धर्मों के गौरवशाली भवनों को इस्लाम की तलवार ने नष्ट नहीं किया वरन् उनके अनुयायियों द्वारा उनको छोड़ देने के कारण उपेक्षा से वे नष्ट हो गये। कितना ही दमन और अत्याचार पूरे राष्ट्र को अपने परम्परावादी धर्म को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। बिना किसी प्रतिरोध के फारस के लोगों ने विजेताओं के धर्म को स्वीकार कर लिया और तिगरिस से ओक्सस नदी के किनारों तक इस्लाम फैल गया। वहां का प्राचीन धर्म जर्जर हो गया था और उससे सभ्य लोगों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को सन्तोष नहीं मिलता था। खारीमन की आतंकित करने वाली छाया ने 'सूर्य और अग्नि' की चमक को खत्म कर दिया था। फारस की जनता ने मुहम्मद के एक-ईश्वरवाद के धर्म को अपनाकर शैतान की शाश्वत निरंकुशता से अपने को मुक्त माना था।

उत्तरी अफ्रीका में सिकन्दरिया से कार्थेज तक का क्षेत्र ऐसा था जहां इस्लाम के प्रचार से ईसाई धर्म नष्ट हो गया था। वहां की धार्मिक क्रान्ति के लिए इस्लाम की असहनशीलता उतनी जिम्मेदार नहीं थी

जितनी उस धर्म का स्वतः अधःपतन और वहां अव्यवस्था और अन्धकार की सी स्थिति का उत्पन्न होना। ईसा के धार्मिक उपदेशों का विश्वास साइप्रियन योग्यता, दया और शक्ति के आधार पर अथानासियस और अगस्टाइन ने स्थापित किया था, उसको अरियन और डोनाटिस्ट के विरोधी विचारों और कैथोलिक क्रोध ने नष्ट कर दिया और साधारण जनता ने धार्मिक विरोध का झंडा खड़ा कर दिया था और विरोधी विचारों के कारण सभी सम्पन्न क्षेत्रों में दरिद्रता फैल गयी थी। उसके बाद वेन्डल और मूर लोगों के आक्रमणों से लोगों की स्थिति खराब हो गयी और उन्हें बाध्य होकर ईसाई मतवाद में शरण लेनी पड़ी।

सामाजिक विघटन और आध्यात्मिक निराशा के घोर अंधकार के युग में अरब के मसीहा ने शौर्य और नयी आशाओं की मशाल जलाकर अन्धकार को दूर किया। सामान्य लोगों को नये धर्म ने इस संसार और बिहिश्त के आशाओं के दरवाजे खोल दिये। इस्लाम की विजय के बिगुल ने उन आत्माओं में आशा जागृत की जो आध्यात्मिक रूप से अपने को पराजित मानकर ईश्वरीय अस्तित्व के सम्बन्ध में पाखंडों से दबे हुए थे। प्रकृति के स्वस्थ प्रभाव और नये धर्म के उत्साहपूर्ण विश्वास ने ईसाई धर्म के प्रभाव में संन्यास के प्रतिकूल विचारों को अभिभूत कर दिया और निराशा के गर्त में डूबे लोगों को नवीन दृष्टि प्रदान की। नये विचारों के प्रभाव में एक नया समाज उत्पन्न हुआ जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राकृतिक गुणों के आधार पर साहस और क्षमता से ऊंचे उठने का अवसर प्रदान किया। इस्लाम की उत्साहपूर्ण प्रेरणा से और सरासैनी विजेताओं की उदारता से उर्वर उत्तरी अफ्रीका के मेहनती लोगों ने अपने क्षेत्र को समृद्ध बनाया।

'यह एकदम मिथ्या धारणा है कि अरब की प्रगति केवल तलवार के बल पर प्राप्त की गयी। तलवार के द्वारा किसी राष्ट्र के मान्य सिद्धान्त को शायद बदला जा सकता है लेकिन उससे मानव चेतना को बदला नहीं जा सकता। उसके तर्क गम्भीर बात थी जिससे एशिया और अफ्रीका के लोगों के घरेलू जीवन में परिवर्तन आया।....

'इस राजनीतिक दृश्यमान की व्याख्या के लिए, विजित देशों की सामाजिक अवस्था और उसके कारण ढूंढ़ने का प्रयास किया जाना चाहिए। उन देशों में धर्मों का प्रभाव काफी समय पहले से समाप्त हो गया था और उसके स्थान पर अध्यात्मवादी वेदान्त स्थापित हो गया था....यह कैसे संभव था कि निरक्षर व्यक्ति जो कठिनाई से स्पष्ट बातों के सम्बन्ध में सोच सकता था, वह अध्यात्म के रहस्यों को समझता? फिर भी उन लोगों को मोक्ष के उन सिद्धान्तों को पढ़ाया जाता था जिनमें मानव जाति का पतन और उसकी निन्दा निहित थी। उन्होंने देखा कि व्यक्ति के गुणों और दुर्गुणों पर विचार नहीं किया जाता और पाप के लिए दुष्कर्मों को नहीं देखा जाता और अकेले अध्यात्म के विरोधियों को पापी कहा जाता है। यह कैसे उदाहरण हैं जब ईसाई बिशप हत्या, जहर खिलाने, परस्त्री गमन जैसे व्यभिचार, अन्धा करने, दंगे कराने, विद्रोह कराने और गृह-युद्ध कराने में लिप्त रहते और जब महान् धर्मगुरु एक-दूसरे को ईर्ष्यावश धर्म से निकालने के अभियान चलाते थे और वे स्वयं भौतिक शक्ति के लिए एक-दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी बने हुए थे। नपुंसकों को सोने की घूस दी जाती थी, दरबारियों और राजाओं के परिवार की स्त्रियों को धार्मिक प्रेम के तोहफे दिये जाते थे और राजदरबारों के निर्णयों को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता

था। धर्मगुरु अपने भक्तों की भीड़ में ईश्वरीय आवाज के दावेदार के रूप में आडम्बरपूर्ण भाषण करते थे लेकिन स्वयं निम्नकोटि के छल-कपट के षड्यंत्रों को रचते थे। ईसाई मठों में ऐसे भिक्षु रहते थे जो साम्राज्यों की सेनाओं में आतंक फैलाते थे और बड़े-बड़े नगरों में दंगे और विप्लव कराते थे और वे अपने कथित अध्यात्मवादी विचारों का आडम्बर प्रदर्शित करते थे, लेकिन वे पीड़ित मानव के अधिकारों और उसकी बौद्धिक स्वतंत्रता के पक्ष में आवाज नहीं उठाते थे। ऐसी परिस्थिति में निराशा और विरक्ति की भावना के अतिरिक्त और क्या सम्भव था ? निश्चय ही मनुष्यों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि....वे ऐसी व्यवस्था की सहायता करते जिसका उनके दिल और दिमाग पर असर नहीं रह गया था।

'इसलिए जब विभिन्न सम्प्रदायों में विद्वेषपूर्ण संघर्ष था....और असंख्य प्रतिद्वन्द्वियों में अराजकता थी, उस समय संसार में एक नवीन युद्धघोष, 'ईश्वर एक है' सुनायी पड़ा, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उस युद्धघोष से गड़बड़ी खत्म हुई। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि एशिया और अफ्रीका के सभी देशों ने उसके सामने घुटने टेक दिये। यदि समय अच्छा हो तो देशभक्ति को धर्म के अधीन माना जाता है। लेकिन उन दिनों में तो धर्म एकदम लुप्त हो गया था।'

(जे. डब्ल्यू ड्रापर, 'हिस्ट्री आफ दि इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट ऑफ यूरोप' भाग 1, पृष्ठ-332-33)

हजरत मुहम्मद के अनुयायियों ने समानता के सिद्धान्त का उपदेश दिया, जिसका आधार अरब के घुमन्तू जीवन में व्याप्त परम्परागत स्वतन्त्रता की भावना थी। उन सभी ने अपने राष्ट्रीय गुण लूटपाट में अपने शौर्य का प्रदर्शन किया था। जब प्राचीन समय की स्वतंत्रता

की भावना ने महान् विजयों के उद्घोष का रूप ले लिया तो अरब का व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से यह बात नहीं भूला कि उसका घोड़ा और उसकी तलवार उतनी तेजी से बढ़ सकती जो किसी अन्य व्यक्ति की रफ्तार हो। उसने अपनी मरुस्थल की मातृभूमि की रक्षा करने में सेसोस्ट्री, साइप्रस, सिकन्दर, दारा, पोम्पेई और अशीरवन, पटोलम्बी और ट्राजन की सेनाओं का सामना करने में हिस्सा लिया था। उसने युद्ध में विजय प्राप्त करने और युद्धस्थल की स्थितियों को बदलने में उत्तम योगदान किया था। लेकिन इस्लाम द्वारा घोषित समानता का सिद्धान्त विजय में सरासेनी योद्धाओं की तलवार से भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। उसका सिद्धान्त रोम, बैजेन्टाइन, फारस और बाद में भारतीय साम्राज्यों के वर्ग और जाति के भेदभाव पर आधारित दमनकारी कानूनों से भिन्न था। इस्लाम ने स्वतंत्रता और समानता की उस भावना की स्थापना की जिसे प्राचीन सभ्यताओं वाले प्रायः सभी देशों में भुला दिया गया था।

अरब लोगों को प्राचीन सभ्यताओं का उत्तराधिकार पाने का गौरव प्राप्त होने के कारण उनका यह दायित्व हो गया कि पुरानी सभ्यताओं के खण्डहरों में दबी पीड़ित मानव जाति का वे उद्धार करते। उस युग की परिस्थितियाँ इस्लाम के नाटकीय प्रसार में सहायक बनीं। संसार भर के शासक वर्गों के आध्यात्मिक और बौद्धिक अधःपतन के काल में इस्लाम का उदय हुआ। सामाजिक पतन, विघटन और निरंकुशता की सामाजिक परिस्थिति से असन्तोष के कारण सामान्य लोगों में महत्त्वाकांक्षाएं उत्पन्न हुईं और उनमें बेहतर संसार की रचना की ललक उत्पन्न हुई। अपने समय की क्रांतिकारी भावना से पहले ईसाई धर्म का विकास हुआ। दुर्भाग्य से उसकी विजय के बाद पुराने शासक वर्ग ने उसको संरक्षण प्रदान किया, उससे ईसाई धर्म पुरानी समाज व्यवस्था का पोषक बन गया। ईसाई चर्च के संस्थापक

धर्मगुरुओं ने अपने मसीहा के वे उपदेश भुला दिए जिनके द्वारा ईसा ने रोम साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का उपदेश दिया था और उसके विद्रोही उपदेश के स्थान पर यह कहना शुरू किया 'सीजर को उसका भाग दो', यह बात यहूदी इतिहास और परम्परा के विरुद्ध थी। शासक वर्ग से समझौता कर लेने के बाद ईसाई धर्म नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लक्ष्य से हट गया जो उस युग की मांग थी। उसने गरीब और पीड़ित जनता द्वारा संसार भर को जीतने के अभियान का नेतृत्व करने से इन्कार कर दिया और उनके सामने मृगतृष्णा रखी कि ऐसा समय आयेगा जब पृथ्वी पर दूध और शहद की नदियां बहेंगी। ईश्वरीय राज्य वाले स्वर्ग में वे विनम्र लोग प्रवेश पायेंगे जो इस संसार के शासकों के दमन के सामने आत्मसमर्पण करते हैं।

ईसाई धर्म के पतन के बाद ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुरूप अधिक शक्तिशाली धर्म की आवश्यकता थी। इस्लाम ने अपने अनुयायियों को बिहिश्त का आनन्द दिलाने का वायदा ही नहीं किया वरन् उसने इस संसार में विजय प्राप्त करने की प्रेरणा भी दी। निस्सन्देह अरब के मसीहा के स्वर्ग की कल्पना और कुछ नहीं थी वरन् उसमें इस संसार में सुखी जीवन और आनन्द के आदर्श को शामिल किया गया। हजरत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों के लिए केवल राष्ट्रीय एकता का एक मंच ही तैयार नहीं किया वरन् अरब राष्ट्र के विद्रोह के स्वर को नये अस्त्र का रूप दिया। अरब के सभी पड़ौसी देशों की पीड़ित और शोषित जनता पर भी स्वर का अच्छा प्रभाव पड़ा।

इस्लाम की नाटकीय सफलता आध्यात्मिक के साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक कारणों से हुई थी। प्रसिद्ध इतिहासकार गिबन ने सबसे अधिक महत्त्व के सम्बन्ध में लिखा है—'जोरोस्टर की

व्यवस्था से अधिक पवित्र, मूसा के नियमों से अधिक उदार, हजरत मुहम्मद के धर्म ने सातवीं शताब्दी में व्याप्त धर्म उपदेशों की सादगी को अपमानित करने वाले आडम्बर की अपेक्षा तर्क का अधिक पालन किया था।'

(दि डिक्लाईन एण्ड फॉल आफ रोमन इम्पायर)

एक अन्य इतिहासकार का कहना है कि इस्लाम की प्रभावोत्पादक विजय का कारण जितना उसका मुक्तिदायी और समानता सिद्धान्त था उतनी उसकी सैनिक शक्ति नहीं थी। प्रत्येक संघर्ष में, जिसमें सरासेनी योद्धाओं ने ईसाई राष्ट्र को जीता था, इतिहास से यह बात प्रकट होती है कि उनकी विजय विजित देशों की जनता के समर्थन के कारण हुई थी। अधिकांश ईसाई सरकारों के लिए यह कलंक की बात थी कि उनका शासन अरब आक्रमणकारियों की तुलना में अधिक दमनकारी था।

'सीरिया के निवासियों ने हजरत मुहम्मद के अनुयायियों का स्वागत किया था। मिस्र के चोगाधारी लोगों ने अरब आक्रमणकारियों की सहायता की और ईसाई बर्बर लोगों ने अफ्रीका की विजय में अरबों को सहायता प्रदान की। कुस्तुनतुनिया की ईसाई सरकार के प्रति विभिन्न देशों की जनता में घृणा व्याप्त थी और उन लोगों ने मुसलमानों के अधीन होना अच्छा समझा। अमीरों की धोखेबाजी और जनता की उदासीनता के कारण स्पेन और दक्षिणी फ्रांस के निवासियों ने अरब आक्रमणकारियों की अधीनता आसानी से स्वीकार कर ली।'

(फिनले —हिस्ट्री ऑफ दि बैजेन्टाइन इम्पायर)

मुहम्मद और उनकी शिक्षाएं

इस्लाम के संस्थापक को 'मानव जाति के सबसे अधिक लोगों को प्रभावित करने वाला व्यक्ति' कहा गया है। (ड्रापर—हिस्ट्री ऑफ दि इंटेलेक्चुअल डेवलपमेन्ट ऑफ यूरोप, भाग 1, पृष्ठ-329)। जब तक उन्होंने अपने को रसूल घोषित नहीं किया था तब तक उनके व्यक्तित्व में कोई विशेष बात नहीं थी। उनके उस कथित दावे की नींव अन्य सभी धर्मों के मसीहाओं, धर्मगुरुओं और सन्तों के दावों से अधिक भिन्न नहीं थी। ईसाई अभियान ने अरब के मसीहा को 'एक पाखण्डी' कहा था। लेकिन इस बात को भुला दिया गया कि उसको मूसा और ईसा के नामों के साथ मसीहा कहा गया था। एक गुमनाम लेखक की पुस्तक 'तीन पाखण्डी' ने मध्ययुग के अन्त में पूरे यूरोप में तहलका मचा दिया था। कहा जाता है कि उस पुस्तक का लेखक ईसाई नरेश फ्रेडरिक बारबोसा था और कुछ लोग उसे मुसलमान दार्शनिक 'अबे रोस' बताते हैं।

यदि हजरत मुहम्मद पाखण्डी थे तो उन्होने वह भूमिका सचेतन रूप से नहीं अपनायी थी। दूसरे लोगों ने उनके खुदाई रसूल होने का प्रचार किया था जिस पर अज्ञान और आडम्बरों में डूबे लोगों ने विश्वास किया। राष्ट्रीय एकता के आदर्श के विचारक के रूप में हजरत मुहम्मद ने यह अनुभव किया कि युद्धरत अरब कबीलों को उस पर तब तक राजी नहीं किया जा सकेगा जब तक कि उस बात का समर्थन अलौकिक रूप से न हो। जनता में व्याप्त अज्ञान और

पूर्व धारणाओं के विचारों के विरुद्ध कोई अन्य तर्क काम नहीं आता। छोटे देवताओं को महान् सर्वशक्तिमान अल्लाह के नाम से ही अभिभूत किया जा सकता था। छोटे देवताओं के कोप को सर्वशक्तिमान अल्लाह की दया से खत्म किया जा सकता था। सर्वशक्तिमान एक-ईश्वर (अल्लाह) में विश्वास के आधार पर कबीलों के बहुत से देवताओं के विरुद्ध लोगों को विद्रोह करने के लिए उत्साहित किया जा सकता था। यदि कोई सर्वशक्तिमान एक-ईश्वर नहीं था तो उसकी खोज करनी थी। हजरत मुहम्मद के विचारों में यही दावा किया गया है। ऐसा करने में पाखण्डी होने की कोई बात नहीं थी। क्या विवेकी वाल्टायर ने करीब एक हजार वर्ष बाद इसी प्रकार के तर्क का सहारा नहीं लिया था, जिसे हजरत मुहम्मद ने अपनाया था? लेकिन बाद वाले मामले में वह तर्क प्रतिक्रिया का समर्थन करने के लिए दिया गया था। वाल्टायर ने एक-ईश्वर की खोज करने की आवश्यकता पर इसलिए जोर दिया था क्योंकि उसके आधार पर जर्जर सामन्तवादी राजतंत्र वाले समाज की रक्षा की जा सके। हजरत मुहम्मद के समय में उस तर्क का उपयोग उस समय की परिस्थितियों के क्रांतिकारी उद्देश्य के लिए किया गया था। यदि मानव के मस्तिष्क में सर्वशक्तिमान एक सत्ता में विश्वास हो जाय तो उन विश्वासों के लिए जनसामान्य के सहयोग को प्राप्त किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त 'एक-ईश्वर' का विचार हजरत मुहम्मद की खोज नहीं थी। उस विचार का विकास उन सामाजिक परिस्थितियों में हुआ था जिनका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। हजरत मुहम्मद का लक्ष्य एक-ईश्वर की सत्ता के लिए साक्ष्य को ढूँढ़ना था। और यदि आप यह चाहते हों कि लोगों को उस साक्ष्य पर विश्वास हो तो

आपको उसे इस प्रकार प्रकट करना चाहिए जिस पर वे विश्वास करने के लिए राजी हो जायं।

लेकिन हजरत मुहम्मद द्वारा एक-ईश्वर की खोज का आधार वाल्टायर की भांति सनक नहीं थी। उन्होंने ईमानदारी से अपने उत्साह के आधार पर अपने अज्ञानी अनुयायियों को प्रेरणा देने के लिए एक-ईश्वर की खोज की थी— एक-ईश्वर (अल्लाह) की खोज जो अरब राष्ट्र की रक्षा कर सकता था। वह रेगिस्तान के निर्जन स्थान पर गये और साधना, उपवास और इबादत की पद्धति विकसित की, जिसे 12वीं शताब्दी में भी ईश्वरीय प्रेरणा का स्रोत माना जाता था। और उस साधना, उपवास और इबादत का मनोवांछित फल हुआ। 'उन्हें अलौकिक शक्ति के रूप में अल्लाह के दर्शन हुए और उन्हें रहस्यपूर्ण स्वर सुनायी पड़े, जिनमें उन्हें ईश्वर का रसूल बनने का आदेश दिया गया। उसी प्रकार के स्वर उन्हें पत्थरों और पेड़-पौधों से भी सुनाई देने लगे।'

(ड्रापर— हिस्ट्री ऑफ़ दि इंटेलेक्चुअल डेवलपमेन्ट ऑफ़ यूरोप)

इस प्रकार के अनुभव मस्तिष्क के विकार से उत्पन्न होते हैं और प्रस्तावित व्यवहार और साधनाओं को करने से भी वे उत्पन्न होते हैं। विचारों के स्थिर हो जाने पर चाहे कितने ही झक अथवा अनुमान मूर्तरूप ग्रहण कर लेते हैं और यदि मस्तिष्क को उनमें एकाग्रता से स्थिर कर दिया जाय तो वे दूसरी बातों की चेतना को अलग कर उन्हीं विश्वासों को स्वीकार कर लेते हैं। ऋषियों और तपस्वियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से यह प्रकट होता है कि 'प्रेरणा' अथवा और कोई धार्मिक अनुभव उस शारीरिक परिस्थिति से उत्पन्न होता है जो एकाएक अथवा सोद्देश्य साधनाओं से प्राप्त किया जा सकता है।

हजरत मुहम्मद ने उसी प्रकार का आचरण किया जैसा कि उनके पहले और बाद के मसीहा करते थे। लेकिन इनके सम्बन्ध में ऐसा एक तथ्य था जिसे उनका श्रेय माना जाना चाहिए। वह एक ऐसे निपुण व्यक्ति थे जिन्हें मनो-शारीरिक लक्षणों ने अभिभूत नहीं किया जैसा कि आध्यात्मिक विकास का लक्षण माना जाता था। उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि वे पागल न हो जायं। उनका लक्ष्य विफल हो जाता यदि कुशाग्र बुद्धिसम्पन्न चतुर पत्नी ने ऐन मौके पर उनके जीवन में प्रवेश न किया होता। खदीजा स्वयं धनी व्यापारी थी और उसमें लौकिक चतुराई थी, जिसने अपने पति के मानसिक तनाव के आध्यात्मिक मूल्य को समझा था। उसने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि उनके मानसिक तनाव और प्रचलित बातों से भिन्न सत्य पागलपन के लक्षण नहीं हैं वरन् वह अल्लाह के आदेश अथवा 'आयतें' हैं। हजरत मुहम्मद के मनो-शारीरिक लक्षणों के आधार पर उसने उनमें यह विश्वास उत्पन्न किया कि अल्लाह के देवदूतों ने उन्हें ईश्वर का संदेश दिया और वे उन देवदूतों को साक्षात् रूप में देख सके थे। निस्संदेह रूप से इस प्रकार का नाटक अज्ञान, पाखण्ड और भ्रान्तियों के आधार पर रचा जा सकता है जिसके मुख्य पात्रों में उनकी सत्यता की भ्रांति में विश्वास उत्पन्न हो जाता है। लेकिन सभी धर्मों का जन्म इसी प्रकार होता है। यह नहीं सोचना चाहिए कि इस्लाम कोई अपवाद था। वह अपवाद इसी रूप में था कि उसने अपने धर्म के लिए दैवी आधार खोज लिया और उसमें धार्मिक अंधविश्वास और आध्यात्मिक अनुमान कम थे और गम्भीर राजनीतिक विचार और प्रगतिशील सामाजिक सिद्धान्त तथा व्यक्तिगत आचरण की प्रशंसनीय संहिता का आधार अधिक सुदृढ़ था। 'हजरत मुहम्मद ने निरर्थक आध्यात्मिक बातों से

अपने को अलग रखा और अपने लोगों की सामाजिक स्थिति को सुधारने की ओर अधिक ध्यान दिया और उनके लिए व्यक्तिगत शारीरिक सफाई, गम्भीरता, रोजा, उपवास और इबादत के नियमों पर जोर दिया। उन्होंने अन्य सभी बातों से अधिक दान देने और पुण्य करने पर अधिक जोर दिया। अपनी उदारता की शिक्षा से, जो उस समय अजनबी हो गयी थी, उन्होंने कहा कि मोक्ष अथवा पापों से मुक्ति किसी भी धर्म को मानने वालों को मिल सकती है बशर्ते वे सद्‌गुणों से सम्पन्न हों।'

(ड्रापर—हिस्ट्री ऑफ दि इंटेलेक्चुअल डेवलपमेण्ट ऑफ यूरोप)

कुरान किसी बुद्धिमान व्यक्ति की कृति नहीं है अतः उसमें कुछ अपरिपक्व विचार और काल्पनिक अनुमान हैं। उसकी कमजोरियाँ उसके एक महान् धर्म के प्रेरणा स्रोत होने के गुण को आच्छादित कर लेती हैं। लेकिन हजरत मुहम्मद का धर्म कठोर एक-ईश्वरवाद था और उस मसले पर वह किसी प्रकार का समझौता नहीं करता है और अपनी इसी विशिष्टता के कारण वह अन्य सभी धर्मों से अधिक श्रेष्ठ धर्म बन गया। दार्शनिक रूप से ईश्वर का विचार इस धर्म का आधार है। उस विचार को सभी प्रकार की भ्रांतियों से मुक्त नहीं किया जा सकता जब तक कि यह विचार स्वीकार न किया जाय कि संसार की उत्पत्ति शून्य से हुई। यूनान के प्राचीन दार्शनिकों और भारत के दार्शनिकों ने विवेकवाद पर जोर दिया जिसने इस कल्पना को दूर कर दिया था। उसके परिणामस्वरूप उस प्रारम्भिक विवेकवाद की पृष्ठभूमि से उत्पन्न धर्म ईश्वर के मौलिक विचार को प्रमाणित करने में सफल नहीं हुए थे। इसके परिणामस्वरूप सभी महान् धर्मों में—हिन्दू, यहूदी और ईसाई सभी में—अन्त में बहुदेववाद की स्थापना हुई जिनसे तार्किक आधार पर

धर्म का ही खण्डन हो जाता है। बहुदेववाद में संसार की विभिन्न शक्तियों के देवताओं को ईश्वर के समकक्ष प्रतिष्ठित किया जाता जिससे ईश्वर के विचार पर सन्देह उत्पन्न हो जाता है। उससे सृष्टि रचना और ईश्वर का विचार भी खत्म हो जाता है। यदि संसार सनातन काल से अपने आप स्थित है तो उसके निर्माता की कल्पना करना आवश्यक नहीं है। और यदि ईश्वर संसार का निर्माता नहीं है तो उसको स्वयंसिद्ध मानने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

हजरत मुहम्मद के धर्म ने उक्त पेचीदी गांठ को खोल दिया। उसने ईश्वर के विचार को प्रारम्भिक विवेकवाद की कठिनाई से मुक्त करके इस बात पर जोर दिया कि अल्लाह ने शून्य से संसार की सृष्टि की। इस विवेकतर विचार पर उसमें जोर दिया गया। अल्लाह (ईश्वर) अपने सर्वशक्तिमान और तेजस्विता के रूप में स्वीकार किया गया। उसमें एक सृष्टि क्या अनेक सृष्टियों की रचना करने की शक्ति है, जो उसके सर्वशक्तिमान होने का प्रमाण है। सर्वशक्तिमान ईश्वर-अल्लाह की भावना की स्थापना पुरानी बातों और धर्मांधता के आधार पर की गयी, यह हजरत मुहम्मद के लिए श्रेय की बात है। इसी श्रेय के आधार पर उन्हें इतिहास के पवित्रतम धर्म का संस्थापक स्वीकार किया गया है। चूंकि इस्लाम विवेकतर धर्म है, यही कारण है उसने सभी उन धर्मों पर विजय प्राप्त की जिनमें उच्च आध्यात्मिक कल्पनाएं और धर्म की बारीकियां थीं और जिनमें उच्च दार्शनिक दावे किये जाते थे, वे सभी इस्लाम से पराजित हो गये और उनके धर्मों की सचाई को दोषपूर्ण और झूठा सिद्ध कर दिया गया।

एक-ईश्वरवाद एक अत्यन्त विनाशकारी सिद्धान्त है। स्वयं धर्म का उच्चतम रूप होने के कारण वह अन्य धर्मों की जड़ों पर कुठाराघात

करता है। वह ईश्वर को संसार से परे मानता है अतः ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की संभावना पैदा होती है जिसमें ईश्वर के बिना भी सृष्टि का काम चल सके। कठोर एकात्मवादी धर्म होने के कारण इस्लाम मानव इतिहास के उस अध्याय को समाप्त कर देता है जिसमें धार्मिक भावना की ही प्रधानता रहती थी और उसका स्वभाव ऐसा था जिसके द्वारा अशास्त्रीय आधार पर संसार की व्याख्या की जा सके। उस प्रकार की व्याख्याओं ने पुराने धार्मिक विचारों के स्थान पर आधुनिक विवेकवाद की नींव रखी। 'हम लोग एकात्मवाद की तुलना एक महान् झील से कर सकते हैं जिसमें विज्ञान की बाढ़ का पानी जमा होता है और जब पानी सीमा से अधिक बढ़ जाता है तो उसका बांध टूट जाता है और वह बहने लगता है....एकात्मवादी धर्मों में तीसरा धर्म होने के कारण इस्लाम भौतिकवाद के सबसे निकट है। यह अन्य धर्मों की तुलना में नया है और उसने पहली बार अरब सभ्यता के उत्कृष्ट विकास में योगदान किया और स्वतंत्र दार्शनिक भावना से उसका सम्बन्ध स्थापित किया। उस दार्शनिक भावना का मध्य युग में यहूदियों पर शक्तिशाली प्रभाव था और जिसने पश्चिम के ईसाई धर्म को भी प्रभावित किया था।'

(एफ. ए. लांगे—दि हिस्ट्री ऑफ मैटीरियलिज्म, भाग 1 पृ. 174-177

एकात्मवादी धर्मों में सबसे अधिक पूर्ण होने के कारण इस्लाम ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही। कुरान की अपरिपक्वता से इस्लाम के क्रांतिकारी प्रभावों को विकसित करने में बाधा नहीं पड़ी।

इस्लाम के कठोर एक-ईश्वरवाद के सिद्धान्त से खुदा के रसूल होने के हजरत मुहम्मद के दावे का निषेध भी हुआ। कुरान में मूसा और ईसा को मसीहा स्वीकार किया गया है और अन्य हिब्रू मसीहाओं को ईश्वर का दूत कहा गया है। यद्यपि हजरत मुहम्मद के रसूल होने के

दावे का खुला विरोध आरम्भ में नहीं किया गया, लेकिन उनके अनुयायियों ने गुप्त रूप से उसमें संदेह व्यक्त किया था। अल्लाह का रसूल होना इस्लाम का मौलिक सिद्धान्त नहीं है। उसकी वह विशिष्टता का आधार एक-ईश्वरवाद का सिद्धान्त है। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के तत्काल बाद उनके अनुयायियों में इस सम्बन्ध में मतभेद पैदा हो गए थे। जब हजरत मुहम्मद की मृत्यु का समाचार सीरिया पर आक्रमण के लिए तैनात अरब सेना को मिला तो उनके भक्त उमर ने उस खबर पर विश्वास करने से इनकार कर दिया और उस व्यक्ति का सिर काटने की धमकी दी जो यह खबर लाया था और जिसे उन्होंने काफ़िर समझा था। इस पर वयोवृद्ध अबूबकर ने युवा अरब नेता को झिड़की देकर समझाया : 'क्या तुम मुहम्मद की आराधना करते हो अथवा उसके अल्लाह की आराधना करते हो? मुहम्मद का अल्लाह हमेशा जीवित है लेकिन उनका रसूल हम जैसा आदमी था जो हमारी तरह पैदा होता है और मरता है। हजरत मुहम्मद ने अपनी भविष्यवाणी के अनुसार साधारण मनुष्यों के जीवन का अनुभव भोगा था।'

यह भी विचारणीय बात है कि हजरत मुहम्मद के उत्तराधिकारी ने उनके न रहने पर उन्हें ईश्वरीय शिक्षा देने वाला धर्म गुरु कहा था और उन्हें मसीहा या रसूल नहीं कहा था। धर्मगुरु की कोटि में रखकर हजरत मुहम्मद को अन्य धर्मगुरुओं की श्रेणी में उनके अनुयायियों ने रखा था। इस्लाम के मसीहा या रसूल को दैवी शक्ति का व्यक्ति न मानकर इस्लाम के एक-ईश्वरवाद के सिद्धान्त की शुद्धता की रक्षा की गयी। यदि उन्हें दैवी गुणों से सम्पन्न व्यक्ति स्वीकार कर लिया जाता तो उनको ही सर्वशक्तिमान ईश्वर अथवा अल्लाह के गुणों से सम्पन्न मान लिया जाता। ईश्वर की एकता अथवा प्रथम सिद्धान्त की पूर्णता को तार्किक आधार पर

नहीं रखा जा सकता था। इस विरोधाभास को दूर करने के लिए अस्पष्ट धार्मिक व्याख्याएं प्रस्तुत की गयीं। धर्म की प्रारम्भिक सादगी—धार्मिक कठमुल्लापन अथवा रहस्यपूर्ण आत्मप्रवंचना में बदल जाती है। धार्मिक कट्टरपन के बिना इस्लाम उस ऐतिहासिक भूमिका को पूरा नहीं कर सकता था जो उसने पूरी की। जब हजरत मुहम्मद को दैवी शक्ति से अलग माना गया तो उसका यह दावा भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि शास्त्र पूर्ण और अक्षय सत्ता को बाधित नहीं कर सकता। फलतः धर्मभक्त लोगों के दिमाग के लिए कुछ ढील दी गयी। जन्म-मृत्यु वाले व्यक्ति की शिक्षाओं और उपदेशों को शाश्वत सत्य की महत्ता नहीं दी जा सकती और धार्मिक कानूनों को अनित्य नहीं स्वीकार किया जा सकता।

12वीं शताब्दी तक इस्लाम में समान धार्मिक सिद्धान्त नहीं थे। एक-ईश्वर (अल्लाह) में विश्वास करने के बाद मुसलमानों को अपने आध्यात्मिक जीवन में असीमित स्वतन्त्रता थी। और यह बात इतिहास से मालूम होती है कि अरब विचारकों ने नये धर्म के भीतर रहते हुए विचारों की स्वतन्त्रता और ढिलाई का उपयोग किया। ईसाई धर्म के त्रेतवाद का, जिसे वे एक-ईश्वरवाद के सिद्धात को भ्रष्ट करने का प्रयास मानते थे, खण्डन करने के लिए मुसलमान धर्मगुरुओं ने धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का निरूपण अत्यन्त अमूर्त रूप में किया, जो मानव मस्तिष्क की उपलब्धि कही जायेगी। (देखिए—रेनान 'अबेरोस एट अबेरोसवाद')। अरब लोगों ने अतुलनीय सफलता प्राप्त की। इसका मुख्य कारण हजरत मुहम्मद का एक-ईश्वरवाद का सिद्धान्त था, जिसे उन्होंने पूर्ण रूप से अपनाया था और उसमें किसी प्रकार का पौराणिक मिश्रण नहीं

था। (एफ. ए. लांगे—'दि हिस्ट्री ऑफ मैटीरियलिज्म' भाग 1, पृष्ठ 184)। इसी अधिकार से ऐसे मौलिक धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जो इस्लाम के संस्थापक ने अपरिपक्व रूप में रखे थे और जिनमें महान् विकास की सम्भावनाएं निहित थीं। एक-ईश्वरवाद के कठोर स्वभाव के कारण बाद के विकास ने उसकी धार्मिक विचारों की सीमाओं का अतिक्रमण किया और उससे आध्यात्मिक प्रसार हुआ जिसने विश्वास (धर्म) के युग को समाप्त कर दिया। 'अरब लोगों को यूनानी दर्शन का ज्ञान होने के पूर्व इस्लाम में अनेक सम्प्रदाय और धार्मिक विचारों का उदय हुआ था जिनमें ईश्वर के सम्बन्ध में अमूर्त कल्पनाएं की गयी थीं कि बाद में उसके सम्बन्ध में और कुछ सोचने की गुंजाइश नहीं रह गयी थी। कुछ लोगों का विश्वास इस बात में नहीं था जिसमें न कुछ समझा जा सकता था और न कुछ प्रदर्शित किया जा सकता था....। बसरा के बड़े मदरसे में अब्बासी लोगों के संरक्षण में विवेकवादियों का एक सम्प्रदाय विकसित हुआ जिसने विवेक और धर्म को एक साथ लाने का प्रयास किया। (एफ. ए. लांगे—दि हिस्ट्री ऑफ मैटीरियलिज्म, पृष्ठ 177)।

इस्लाम के इतिहास के पहले पांच या छह सौ वर्षों के दौरान ऐसे विद्वान् पैदा हुए जिनमें अधिक दैवी गुण थे, जो दैवी शक्तियों में माने जाते थे। उन लोगों ने चुपचाप कुरान को एक किनारे रख दिया और आध्यात्मिक मूल्यों के लिए अधिक उन्नत पुस्तकों के अध्ययन पर जोर दिया। ऐसे क्रान्तिकारी विचारक भी सामने आये जिन्होंने तर्क की वेदी पर धर्म का बलिदान कर दिया। धर्मभक्त सेनापतियों में कुछ ने जिनका शासन बगदाद, काहिरा और कोरडोवा में 11वीं शताब्दी तक था, निश्चित ज्ञान पर प्राप्त ज्ञान से

अधिक जोर दिया। बुखारा के स्वतन्त्र साम्राज्य ने मुल्लाओं से अधिक सम्मान शायरों को दिया। धार्मिक गुरुओं की अपेक्षा चिकित्सकों को अधिक सम्मान दिया गया और धर्म के प्रचार से अधिक वैज्ञानिक अनुसंधान पर जोर दिया गया।

यदि हम इस बात को अपने दिमाग में रख लें कि केवल सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से ही नवीन बौद्धिक चेतना विकसित नहीं हुई थी, जिसे इस्लाम की विजय ने उत्पन्न किया था वरन् हजरत मुहम्मद के धर्म में ही वह निहित थी तो इसे समझने के बाद इस्लाम धर्म के पिछड़ेपन और कुरान की आश्चर्यजनक बातों के कारण इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका को कम नहीं आंका जा सकता।

इस्लाम का दर्शन

अरब का ज्ञान-युग करीब पांच सौ वर्ष चला और उन दिनों यूरोपीय इतिहास में अंधकार युग था। उसी अवधि में भारत जमीन पर औंधा पड़ा हुआ था, उस समय ब्राह्मण प्रतिक्रिया का जोर था और बौद्ध धर्म का पतन हो गया था और वह भ्रष्ट हो चुका था। बाद में बौद्ध क्रान्ति के पतन के बाद भारत मुसलमान आक्रमणकारियों के सामने गिर गया।

अब्बासी, फातमी और ओमीनाई शासकों के अधीन क्रमशः ज्ञान और संस्कृति का विकास एशिया, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन में हुआ। समरकंद और बुखारा से फैज और कोरडोवा तक अनेक विद्वानों ने ज्योतिष, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्सा और संगीत की शिक्षाएं ग्रहण कीं और उनका अध्यापन कार्य किया। यूनानी दर्शन का बहुमूल्य कोश ईसाई चर्चों की असहिष्णुता और पाखण्ड के कारण दबा पड़ा था। यदि अरब लोगों ने उसका उद्धार न किया होता तो वह नष्ट हो जाता और उससे कितना नुकसान होता, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

ईसाइयों ने निरर्थक पवित्रता और पुण्यात्मा बनने के छल के आधार पर प्राचीन विज्ञान को अशुद्ध कह कर उसकी उपेक्षा की थी। अज्ञान के उस अहंकार के परिणामस्वरूप यूरोप के लोग मध्ययुगीन अंधकार में डूब गये और उनके उस पतन को रोकने का कोई उपाय नहीं था। प्राचीन यूनान के विचारकों के दैवी ज्ञान ज्योति के

पुनरुद्धार से अज्ञान और पाखण्ड, दुर्भावना और असहिष्णुता से उत्पन्न अहंकार समाप्त हुआ और यूरोप के निवासियों को भौतिक समृद्धि, बौद्धिक विकास और आध्यात्मिक मुक्ति का रास्ता मिला। यह कार्य अरब दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने पूरा किया और यूनानी पूर्वजों का ज्ञान आधुनिक विवेकवादियों तक पहुंचा। विज्ञान की शोध के क्षेत्र में रोजर बेकन अरबों का शिष्य था। हमवोल्ट के मतानुसार अरब लोगों को 'भौतिक विज्ञानों का संस्थापक समझना चाहिए, आज जिस अर्थ में उनका महत्त्व है उसके लिए अरब लोगों को श्रेय है'—(एलेक्जैण्डर बानहम बोल्ट, कासमस, खण्ड—2)। प्रयोग और गणना, नाप-तौल – ऐसे महान् अस्त्र हैं जिनसे प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है और इनके द्वारा यूनान की वैज्ञानिक उपलब्धियों को आधुनिक युग से जोड़ा जा सकता है।

अलकाजी, अलहसन, अलफराकी, अबेसीना, अलगजाली, अबूबकर, अवेमपाक, अल फेंटराजियम (इन अरब नामों का यूरोपीय भाषाओं के इतिहासों में उल्लेख है)—इन सभी नामों को मानव संस्कृति के इतिहास में अविस्मरणीय माना जाता है। महान् अबेरोस ने अरिस्टॅटिल के ज्ञान को आधुनिक सभ्यता को प्रदान किया और ऐसा करके उसने यूरोप की मानव जाति को धार्मिक पाखण्ड और निष्प्राण पांडित्य के पक्षाघाती प्रभाव से मुक्त किया। महान् अरब विवेकवादियों ने, जो 12वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए थे, सुलतान अन्दालूसिया के बौद्धिक संरक्षण में जो कार्य किया उसकी प्रशंसा करते हुए रोजर बैकन ने लिखा है : 'अबेरोस ने प्रकृति की व्याख्या प्रस्तुत की।'

ईसाई चर्च और तत्कालीन धार्मिक प्रभाव के विरुद्ध आध्यात्मिक विद्रोह का झंडा 13वीं और 14वीं शताब्दी में फहराया गया था।

विवेकवादी विद्रोहियों ने प्राचीन यूनान के महान् दार्शनिकों के वैज्ञानिक उपदेशों से प्रेरणा प्राप्त की थी और उनका ज्ञान उन्हें अरब विद्वानों, विशेष रूप से अबेरोस से मिला था। जस्टीनियन ईसाइयों की धर्मांधता ने ईसाई धर्म के पवित्र संसार से मूर्ति पूजकों के ज्ञान को निकाल बाहर किया था। उन लोगों को रोम साम्राज्य से भाग कर फारस में शरण लेनी पड़ी थी, लेकिन वहाँ भी उन्हें पवित्रता के दावेदार लोगों की असहिष्णुता भोगनी पड़ी, जो धर्मभ्रष्ट शिक्षाओं के विरुद्ध थे। अन्ततः अथीनियन (यूनानी) संस्कृति की विज्ञान की शिक्षाओं का बगदाद के अब्बासी खलीफाओं के दरबार में स्वागत किया गया। उन लोगों के ज्ञान का इतना आदर किया गया कि न तो उन्हें कुरान पर आस्था लाने के लिए बाध्य किया गया और न उन्हें तलवार के घाट ही उतारा गया। इसके प्रतिकूल, इस्लाम के धर्मभक्त सेनापति ने प्राचीन ज्ञान वाले अन्य विद्वानों को अपने यहां उदारतापूर्वक शरण दी जो धार्मिक विश्वास और सभी धर्मों का उपहास करते थे।

खलीफाओं ने केवल निष्कासित यूनानी विद्वानों को अपना संरक्षण प्रदान नहीं किया वरन् उन्होंने योग्य व्यक्तियों को रोम साम्राज्य के क्षेत्र में भेज कर वहाँ से प्राचीन यूनानी दार्शनिकों और विचारकों के ग्रंथ मंगवाये। अरिस्टॉटिल, हिप्पारचस, हिप्पोक्रेटस, गलेन और दूसरे यूनानी वैज्ञानिकों की पुस्तकों का अरबी में अनुवाद कराया गया और खलीफाओं ने उन लोगों की अधार्मिक शिक्षाओं के प्रचार को भी मुसलमान जगत् में प्रोत्साहन दिया। राज्य की ओर से स्थापित मदरसों में समाज के सभी वर्गों के हजारों छात्रों को वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान की गयी—'छात्रों में अमीरों के लड़के भी थे तो साधारण मशीनी कारीगरों के भी लड़के थे।' गरीब छात्रों को

शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी और अध्यापकों को अच्छा वेतन दिया जाता था। और उनका बड़ा सम्मान किया जाता था। अरब इतिहासकार अबुल फरगिएस ने खलीफा अलमन्नान के विद्वानों के सम्बन्ध में, दृष्टिकोण के बारे में लिखा है : 'विद्वान लोग अल्लाह द्वारा चुने हुए और उसके सबसे अच्छे और उपयोगी सेवक हैं, उनका जीवन अपनी विवेक शक्ति को विकसित करने में लगा रहता है। अध्यापक व पंडित सच्चे श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और वे लोग संसार के विधायक हैं जिनकी सहायता के बिना संसार पुनः अज्ञान और बर्बरता के सागर में डूब जायेगा।'

इस्लाम की वर्तमान धर्मांधता और कट्टरपन के कारण इतिहास की वह प्रामाणिकता नष्ट हो जाती है जब यह मालूम होता है कि हजरत मुहम्मद के बाद के उत्तराधिकारियों में वैसी धार्मिक सहिष्णुता नहीं थी और उनमें कुछ तो विरोधी मतों के समर्थक थे और उनके उपदेशों का सारतत्त्व यही था कि मानव की तार्किक शक्ति ही सत्य को समझने का मापदण्ड है। इतिहास में अन्यत्र ऐसे कम उदाहरण मिलते हैं जब धार्मिक व्यवस्था का अध्यक्ष विवेकशक्ति को विकसित करने पर जोर देता हो, जैसा कि खलीफा अलमन्नान ने किया था। विवेक शक्ति का विकास धर्म में आस्था की भावना से एकदम प्रतिकूल था। फिर भी अलमन्नान, अब्बासी खलीफाओं में ऐसे नामी खलीफा थे जिन्होंने वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार को प्रोत्साहन दिया और स्वयं ने उसमें हिस्सा लिया। क्या विद्वान अब्बासी खलीफा अपवाद नहीं थे ?

अफ्रीका के फातमी और स्पेन के ओम्मानी शासक राजनीतिक सत्ता की प्रतिस्पर्द्धा में लगे थे, भौतिक समृद्धि और ज्ञान के प्रसार-प्रचार

के भी वे संरक्षक थे। काहिरा के पुस्तकालय में एक लाख पुस्तकें थीं और कोरडोवा में उससे छह गुनी अधिक पुस्तकें होने का दावा था। इन तथ्यों से वह मिथ्या प्रचार खत्म हो जाता है जिसमें इस्लाम को बर्बर कठमुल्लापन का समर्थक बताया जाता है और सिकन्दरिया के पुस्तकालय को जला डालने का आरोप लगाया जाता है। इस प्रकार के मिथ्या प्रचार से बचने के लिए व्यक्ति को मस्तिष्क की पवित्रता और विचारशीलता से काम लेना चाहिए कि विज्ञान और ज्ञान के उन केन्द्रों को बिना सोचे-समझे कैसे आग में झोंका जा सकता था। जिन लोगों ने मानव जाति के पूर्वजों की बहुमूल्य धरोहर की रक्षा की उनके विरुद्ध उसे नष्ट करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। जब इतिहास का निष्पक्ष और वैज्ञानिक अध्ययन किया जायेगा तो इस प्रकार के मिथ्या प्रचार को और मनोमालिन्य से उत्पन्न कहानियों को असत्य प्रमाणित किया जा सकेगा। इस्लाम का विकास मानव जाति के विनाश के लिए नहीं वरन् उसके लिए मंगलकारी सिद्ध हुआ है।

11वीं और 12वीं शताब्दी में लिखी पुस्तकों में जहां सिकन्दरिया के पुस्तकालय के जलाये जाने का विस्तार से वर्णन किया गया है वहीं मिस्र के ईसाई इतिहासकार यूस्टीचियस और इल्मासिन ने अपने देश पर सरासेनी आक्रमणकारियों का अधिकार होने के बाद लिखे अपने इतिहास में उस बर्बर कार्य का उल्लेख नहीं किया है। सिकन्दरिया के इन विद्वानों के विरुद्ध ईसाइयों के शत्रुओं के साथ पक्षपात करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। खलीफा उमर के आदेश को साक्ष्य के रूप में पेश किया जाता है कि उसने अपने सेनापतियों को उक्त बर्बर कार्य के लिए आदेश दिया था। उस आदेश का उल्लेख आसानी से इतिहास की पुस्तकों में नहीं किया

जा सकता था, जिसे ईसाई पादरियों ने लिखा था, जो अपनी रचनाओं को गुप्त रख सकते थे। इस घटना की जांच और सभी सम्बन्धित साक्ष्यों के आधार पर गिबन ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं : 'उमर के नाम से जारी किये गये घृणित आदेश मुसलमान धर्म-प्रचारकों के नियमों के प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। मुसलमानों को दिये गये आदेशों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यहूदियों और ईसाइयों की धार्मिक पुस्तकों को, जिन्हें युद्ध में प्राप्त किया जाय उन्हें कभी न जलाया जाय और वैज्ञानिकों, इतिहासकारों अथवा शायरों, चिकित्सकों, हकीमों अथवा दार्शनिकों की पुस्तकों का उपयोग इस्लाम के अनुयायियों को करने दिया जाय।'

(दि डिक्लाईन एण्ड फाल ऑफ रोमन इम्पायर)

जब से इतिहास को निष्पक्ष आलोचना के रूप में लिखा जाना शुरू हुआ है तब से सिकन्दरिया के पुस्तकालय के जलाये जाने की घटना पर विश्वास नहीं किया गया अथवा उसके सम्बन्ध में गम्भीर शंकाएं प्रकट की गयी हैं। किसी भी मामले में सरासेनी विजय के बाद सिकन्दरिया का पुस्तकालय यूनानी ज्ञान की बहुमूल्य पुस्तकों का केन्द्र नहीं रह गया था। उस आक्रमण के बहुत पहले से सिकन्दरिया पर ईसाई धर्मान्धता का प्रभुत्व हो गया था और वह वैज्ञानिक ज्ञान और दार्शनिक पांडित्य का केन्द्र नहीं रह गया था। अरब आक्रमण के पहले सिकन्दरिया के पुस्तकालय का चरित्र बदल गया था। मूर्तिपूजक यूनानी विद्वानों को ईसाइयों की अहिष्णुता के कारण वहाँ से भाग जाना पड़ा था और अनुमानतः वे लोग प्राचीन ज्ञान की धरोहरों और ज्ञानकोशों को, अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को अपने साथ ले गये होंगे। यदि सिकन्दरिया के पुस्तकालय को उमर के आदेश से जलाया गया तो उसमें धार्मिक विवाद वाली दिखावटी कब्रों को

जलाया गया था, जिनसे मानव जाति का लाभ होने के स्थान पर उसे हानि ही अधिक हुई थी। यह सम्भव है कि सिकन्दरिया के अग्निकाण्ड में मिथ्या और महत्त्वहीन धार्मिक विवादों के विवरण जले हों। लेकिन स्वतन्त्र विचार के खलीफाओं ने पुराने ज्ञान की पुस्तकों और विवरणों का संग्रह किया, उनकी रक्षा की और उनको सुधारा, जिन्हें सिकन्दरिया के पुस्तकालय से उसके जलाये जाने के पहले निकाल लिया गया था।

बैजेन्टाइन बर्बरता ने टोल्मी के उत्तम ग्रंथों को नष्ट कर दिया था। सिकन्दरिया के शिक्षा केन्द्र का विनाश तो सेंट सीरिल ने किया था, जिसने हैपारिया के मेले में शिक्षा की देवी की मूर्ति को तोड़ डाला था। वह कार्य तो पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में किया गया था। ईसाई सन्त दार्शनिक भाषणों और गणित के वाद-विवादों के प्रति अत्यन्त असहिष्णु थे। उस प्रकार के वाद-विवाद सिकन्दरिया के समाज में मूर्तिपूजक युवतियाँ करती थीं, जिन्हें समाज के विद्वानों का संरक्षण प्राप्त था जबकि ईसाई धर्माध्यक्ष के समझ में न आने वाले उपदेशों को केवल विद्रोही ही सुनते थे। विद्वत्ता के आधार पर ईसाई धर्माध्यक्ष ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में तुलना में नहीं आते थे। वह प्रतिस्पर्द्धा को एकदम खत्म करना चाहता था। उसने उत्तेजना फैलाकर सिकन्दरिया पर आक्रमण किया, आगजनी की और धर्म के नाम पर दर्दनाक अपराध किये, जिनका विवरण लिखना और उन्हें याद करना शर्मनाक है।

'इस प्रकार ईसा के 414वें वर्ष में सिकन्दरिया के ज्ञान और दर्शन के केन्द्र के भाग का निर्णय किया गया। इसके बाद विज्ञान को दबा दिया गया और उसे निम्न स्तर पर पहुंचा दिया गया। उसके सार्वजनिक अस्तित्व को सहन नहीं किया गया। यह कहा जा

सकता है कि वास्तव में इसके बाद की कुछ शताब्दियों में वह लापता हो गया। धर्मांधता की गदा ने यूनानी दर्शन के शिरस्त्राण को नष्ट कर दिया! सीरिल के घृणात्मक कार्य पर किसी ने प्रश्न नहीं किया। अब इस बात का दावा किया जाता है कि रोम साम्राज्य में विचारों की अधिक स्वतंत्रता रही होगी।

इस प्रकार के दावों का यह उद्देश्य हो सकता है कि सिकन्दरिया की शक्ति पर उनका अधिकार था और जब सरासेनी आक्रमणकारियों ने उस पर अधिकार किया तो उन लोगों ने उसका विनाश किया। इसके बाद की दो शताब्दियों तक सिकन्दरिया में दमन चक्र चलता रहा जबकि उसे विदेशी आक्रमणकारियों ने खत्म किया। यह बात संसार को देखनी है कि विजयी अरब योद्धा अपनी उद्घोषणाओं के अनुसार अपनी तलवार पर अधिक भरोसा करते थे और उन्होंने कभी अतिमानवीय गुणों का दावा नहीं किया। इस प्रकार बिना धार्मिक विवादों में पड़े उन लोगों ने नये ज्ञान को प्राप्त करने में अपने को स्वतंत्र माना और उनके नेतृत्व में मिस्र को पुनः ज्ञान और विद्वत्ता का केन्द्र बनाया और उन सांस्कृतिक धरोहरों और दार्शनिक विचारों का पुनः उद्धार किया जो अज्ञान के समुद्र में डुबो दिये गये थे।'

(ड्रापर—हिस्ट्री ऑफ दि इंटेलेक्चुअल डेवलपमेण्ट ऑफ यूरोप भाग 1, पृ. 325)

प्राचीन यूनानी दार्शनिकों की पुस्तकों का उद्धार ही नहीं किया गया वरन् उनको अरब लोगों ने संकलित और सुरक्षित किया। उनके सम्बन्ध में विस्तृत व्याख्याएं प्रस्तुत की गयीं। प्लेटो (अफलातून), अरिस्टॉटिल (अरस्तू), यूक्लिड, अपोलोनियम, टोल्मी, हैप्पोक्रेटीस और गेलन की कृतियों को आधुनिक यूरोप के पूर्वजों को अरबी व्याख्याओं के साथ उपलब्ध कराया गया। आधुनिक यूरोप ने

अरब से चिकित्सा और गणित की शिक्षा ही नहीं प्राप्त की, ज्योतिष का ज्ञान भी उन्हें अरब लोगों के माध्यम से मिला जिससे मानव का दृष्टकोण विशाल होता है और प्रकृति के यंत्रवत् नियम प्रकट होते हैं जिनको अरब लोगों ने बड़ी कुशलता से विकसित किया था। अन्तरिक्ष शोध के नये यंत्रों की सहायता से अरब दार्शनिकों ने पृथ्वी की परिधि और अनेक नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान अर्जित किया। उनके नेतृत्व में ज्योतिष का विकास हुआ और उसे दैवी तत्त्वों से मुक्त किया गया। प्रायः सभी प्राच्य देशों में ज्योतिष-ज्ञान पंडितों और पुरोहितों के हाथ में था। अरब लोगों ने उसका विकास विज्ञान के रूप में किया। यद्यपि सिकन्दरिया के डियोफैंट्स ने बीज गणित की खोज की थी लेकिन अरब ज्ञान का वह मुख्य आधार बना। यथार्थ तो यह है कि विज्ञान के सिद्धान्त को अरबों ने बनाया लेकिन उन्होंने विनम्रतापूर्वक यूनानी दार्शनिकों को उसका श्रेय दिया। वनस्पति विज्ञान का अध्ययन चिकित्सा के लिए किया जाता था। डियोसकोरीडस ने करीब दो हजार औषध-पौधों का पता लगाया था जो नये विज्ञान का आधार बना। रसायन शास्त्र (अलकीमिया) के रहस्यों को मिस्र के पुरोहितों ने बड़ी सावधानी से गुप्त रखा था। बेबीलोन में भी उसका व्यवहार होता था। काफी समय बाद भारत के चिकित्सकों को उसका थोड़ा-बहुत ज्ञान हुआ। लेकिन रसायन शास्त्र के विज्ञान के जन्म का श्रेय अरब लोगों द्वारा उसके औद्योगिक रूप के विकास को है। 'उन्होंने पहले अर्क निकालने के भबका की खोज की और उसका नामकरण किया और उन्होंने प्रकृति के तीनों राज्यों के तत्त्वों की व्याख्या की और खार और अम्ल की विशेषताओं की खोज की और बहुमूल्य धातुओं के प्रयोग से भस्म और अन्य औषधियों का निर्माण किया।' (गिबन)

चिकित्सा विज्ञान में अरब लोगों ने सबसे अधिक प्रगति की। मसुआ और जेबर, गेलन के योग्य शिष्य थे और उन्होंने उस ज्ञान में वृद्धि की जो उन्हें अपने गुरु से प्राप्त हुआ था। अबीसीना का जन्म बुखारा में दसवीं शताब्दी में हुआ था। उसे पांच सौ वर्षों तक यूरोप में चिकित्सा शास्त्र का अधिकारी ज्ञाता माना जाता था। 16वीं शताब्दी में सलेरमो का मदरसा यूरोप के चिकित्सकों का शिक्षा का केन्द्र था। उसकी स्थाप्रना सरासेनियों ने की थी और वहाँ अबीसीना ने अध्यापन कार्य किया था।

अरब विद्वानों की यह विशिष्टता थी कि वे उत्साहपूर्वक अनुसंधान करके ज्ञान प्राप्त करते थे। उन्होंने दिखाऊ अनुमान के अहंकार को छोड़ दिया था और मजबूत आधार पर खड़े होते थे। अरबों की विद्वत्ता के सम्बन्ध में वयोवृद्ध अबेरोस का कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसने लिखा है—'दार्शनिकों का मुख्य धर्म अध्ययन करना है। इससे अधिक उत्तम ईश्वर की और कोई आराधना नहीं हो सकती है, सिवाय इसके कि उसे अपने कार्यों का वह ज्ञान हो जिससे उसका ज्ञान और उसकी वास्तविकता का ज्ञान अर्जित होता है। उसकी दृष्टि में यह सबसे अच्छी बात है। सबसे अधम बात कर लगाना है, गलतियों और मिथ्या दावों के द्वारा आराधना का जो प्रयास किया जाता है वह अनुचित है। यह धर्म सभी अन्य धर्मों से सबसे शुद्ध है।' जिस धर्म में ऐसे अधार्मिक विचारों के प्रचार की अनुमति हो चाहे उन्हें पवित्र शब्दाडम्बर के द्वारा ही क्यों न प्रकट किया गया हो, उसमें असहिष्णुता और कठमुल्लापन के लिए कोई स्थान नहीं रहता है। इस प्रकार के विरोधी विचारों के कारण दार्शनिकों को पुरोहितों के क्रोध का सामना करना पड़ा था। इस प्रकार का व्यवहार ईसाई पुरोहितों ने मुसलमानों से कहीं अधिक किया था।

कुछ समय के लिए निकाले जाने के बाद अबेरोस को सुल्तान अन्दालूसिया के दरबार में पुनः प्रतिष्ठित किया गया और उसकी पुस्तकों को इस्लामी क्षेत्र में नष्ट होने से बचा लिया गया। लेकिन उन पुस्तकों के लेटिन भाषा के संस्करणों से धर्म विरोधी अंशों को निकाल दिया गया। फिर भी 12वीं, 13वीं और 14वीं शताब्दियों में यूरोप में धर्म विरोधी विचारों के आन्दोलनों से अरबी दार्शनिक की उन शिक्षाओं से प्रेरणा ली गयी जिनका दमन किया गया था। धर्म विरोधी विचार आन्दोलन ने कैथोलिक ईसाई सम्प्रदाय की जड़ें हिला दी थीं जिसका समूचे मध्ययुग में यूरोप में जोर था। 12वीं शताब्दी से आधुनिक ज्ञान की सफलता तक, अबेरोस के विचारों को ईसाई पवित्रता को नष्ट करने वाले अधार्मिक विचार माना जाता था। उनका ऐसा व्यवहार अकारण नहीं था। ऊपर जो उद्धरण दिया गया है उससे यह संकेत मिलता है कि पूर्ण ज्ञान की खोज की प्रवृत्ति मतभेद का आधार था, जिससे अज्ञान के कूड़ा-कर्कट को साफ किया गया और विश्वास की पवित्रता स्थापित हुई और उस गौरवशाली गुण की स्थापना धार्मिक कथनों के आधार पर की गयी थी।

उस उद्धरण में अबेरोस ने अनुमानकारी पद्धति के मौलिक सिद्धातों का प्रतिपादन किया—उसे सच्चे ज्ञान का सही रास्ता बतलाया। यदि सृष्टि के रचनाकार की पूर्व धारणा को अलग कर दिया जाय और यदि मानव उसे जानना चाहे (जो अन्धविश्वास से भिन्न जिज्ञासा के आधार पर हो) तो उसकी वास्तविकता को प्रयोगसिद्ध ज्ञान के माध्यम से जानने का प्रयास किया जाना चाहिए। उसके इस कथन से प्रकृति और दैवी वस्तुएं और पीछे हटती गयीं और अन्त में वे शून्य में ही समाहित हो गयीं—उसके अस्तित्व के इस यथार्थ को प्रदर्शित किया जा सकता है। जो धर्म ईश्वर के ज्ञान के लिए इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न करता हो वह मानव के सिद्धान्त के महान्

विकास का प्रतिनिधित्व धर्म के आवरण में करता है। महान् धर्मों में सबसे बाद में आया इस्लाम धर्म सबसे महान् था। इसका ऐतिहासिक महत्त्व इसी बात में निहित है।

इस्लाम और अरब ज्ञान के केन्द्र उन ऐतिहासिक क्षेत्रों में थे जहां पुरानी सभ्यताएं—मिस्री, असीरियाई, यहूदी, फारसी और यूनानी सभ्यताएं उठी थीं, उन्होंने संघर्ष किया था और अन्त में उनका पतन हुआ था। पुरानी सभ्यताओं का प्रभाव अरब संस्कृति के निर्माण पर हुआ था और हजरत मुहम्मद के विशेष एक-ईश्वरवाद का सिद्धान्त प्राचीन लोगों के धर्मों के सिद्धान्तं में निहित था। यह बात, अरब दार्शनिकों का श्रेय है कि उन्होंने पहली बार सभी धर्मों का उदय समान विचार के आधार पर स्वीकार किया था। उन्होंने केवल इस बात का दावा नहीं किया कि सभी धर्मों के द्वारा मानव मस्तिष्क ने जीवन और प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने का प्रयास किया था। इससे आगे बढ़कर उन्होंने यह भी कहा कि तर्क के आधार पर ऐसा प्रयास अधिक महान्, उत्तम और उदात्त है। यह विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अबेरोस की शिक्षाओं में सबसे अधिक स्पष्ट है।

इस प्रकार एथेंस और सिकन्दरिया के महान् ऋषियों की आध्यात्मिक और वैज्ञानिक शिक्षाओं के आधार पर अरब लोगों ने आधुनिक सभ्यता की नींव रखने में अपना मौलिक योगदान किया। संशयवाद सभी विश्वासों का शक्तिशाली विलयन है। जैसे ही आलोचना किसी विश्वास को चुनौती देती है उसके साथ ही मानव विकास का ऊषाकाल प्रकट होने लगता है। 'तीन पाखण्डी' (थ्री इम्पोस्टर्स) नामक पुस्तक गुमनाम लेखक ने प्रकाशित की। उसका शंका और संशय के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उस पुस्तक के लेखक के रूप में ईसाई धर्म-विरोधी सम्राट् फ्रेडरिक बारबोसा समझा जाता है अथवा मुसलमान दार्शनिक अबेरोस को उसका लेखक माना जाता

है। तीन पाखण्डियों में मूसा, ईसा और मुहम्मद की गणना की गयी है। उसके लेखक के सम्बन्ध में यह सन्देह है कि वह ईसाई था और दूसरे जिस व्यक्ति पर संदेह किया गया, वह मुसलमान था। निस्सन्देह उन दिनों धर्म का अधःपतन हो गया था।

13वीं शताब्दी के पहले संशयवाद था लेकिन उस पर सच्ची श्रद्धा नहीं थी। जिस सिद्धांत पर मतभेद था और उसे रद्द कर दिया गया था, लेकिन ईसाई धर्म के आधार को छुआ नहीं गया था। जब यह बात कही गयी कि सभी धर्मों का समान रूप से उदय हुआ तो उक्त आधार पर ही आघात किया गया। यदि सभी धर्म यथार्थ रूप में समान हैं तो फिर हर एक के सिद्धान्त और कठमुल्लापन का, मानव जाति की आध्यात्मिक एकता के मार्ग में बाधक मानकर, परित्याग कर दिया जाना चाहिए। लेकिन यदि धर्मों को उनके सिद्धान्तों और मूढ़ाग्रहों से अलग कर दिया जाय तो वे अपने पैरों पर खड़े नहीं रह सकते। अरब दार्शनिकों ने पहली बार सभी धर्मों की समान उत्पत्ति के सिद्धान्त को सामने रखा।

अरब ज्ञान का चरमोत्कर्ष अबेरोस के विचारों में हुआ था। वह 9वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक के महान् विचारकों और दार्शनिकों की श्रेणी में महानतम और अन्तिम था। उनके संक्षिप्त संदर्भ से उनमें से कुछ विचारकों की शिक्षाओं का उल्लेख करके उनकी उत्पत्ति और उनके क्रान्तिकारी महत्त्व को समझा जा सकेगा, जो इस्लाम धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में अंगीकार किये गये और उनकी सफलता में 'अल्लाह की तलवार' ने योगदान किया।

आध्यात्मिक एकता के आधार पर लौकिक एकता स्थापित करके उसके परिणामस्वरूप आर्थिक समृद्धि प्राप्त की गयी और नये

इस्लामी राष्ट्र ने मानव संस्कृति के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया। एक सौ वर्षों तक उसने विनम्रतापूर्वक दूसरों, विशेष रूप से यूनानी दार्शनिकों से सीखा। उसको सीखने के बाद अरब में विचार और ज्ञान के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से मौलिक विचार विकसित हुए।

अरब दार्शनिकों में अलकांदी (अलकाजी) सबसे पहला दार्शनिक था। वह अब्बासी खलीफाओं की राजधानी में रहता था और 9वीं शताब्दी के आरम्भ में उसने ख्याति प्राप्त कर ली थी। उसका कहना था कि दर्शन का आधार गणित शास्त्र होना चाहिए और उसे केवल आलसी कल्पनाओं से मुक्त किया जाना चाहिए। अमूर्त दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन तर्क के आधार पर किया जाना चाहिए। उनको ठोस तथ्यों और नियमों के आधार पर होना चाहिए जिससे उनसे निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकें। उस दार्शनिक के सिद्धान्तों द्वारा उन विचारों की कल्पना की गयी जिन्हें करीब सात सौ वर्षों के बाद फ्रांसिस बैकन और देकार्त ने व्यक्त किया था। आज के युग में भी अनेक दार्शनिक और विद्वान अरब विद्वान के गुणों से लाभान्वित हो सकते हैं जिनका प्रतिपादन एक हजार वर्ष पूर्व किया गया था।

उसके बाद अलफराबी का नाम आता है जो एक शताब्दी बाद हुआ और जो दमिश्क और बगदाद में अध्यापन कार्य करता था। उसने अरिस्टॉटिल की कृतियों की व्याख्या प्रस्तुत की जिनका अध्ययन शताब्दियों तक आधिकारिक व्याख्या के रूप में किया गया। उसने चिकित्सा शास्त्र में भी विशिष्टता प्राप्त की थी। रोजर बैकन ने उससे गणित की शिक्षा ली थी।

10वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अबीसीना सामने आये। वह बुखारा के अमीर जमींदार घराने में पैदा हुए थे और उनके परिवार में

सम्पन्न व्यापार होता था। उन्होंने गणित और भौतिक विज्ञान की पुस्तकें लिखीं, लेकिन इतिहास में उनका उल्लेख चिकित्सा विज्ञान के लेखक के रूप में हुआ। सलेरमो का चिकित्सा का मदरसा उसकी प्रसिद्ध यादगार थी और 16वीं शताब्दी के अन्त तक उसकी चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें पाठ्यपुस्तकें थीं। अबीसीना के दार्शनिक विचार धार्मिक शिक्षाओं से इतने भिन्न थे कि स्वतन्त्र विचारों के समर्थक बुखारा का अमीर अबीसीना के विरुद्ध इमाम के दबाव को मानने से इन्कार नहीं कर सका। उसे मजबूरन बुखारा के अमीर का दरबार छोड़ना पड़ा। उसके बाद उसने अरब साम्राज्य की यात्रा की और विभिन्न स्थानों पर चिकित्सा की शिक्षा और अपने दर्शन के अध्यापन का काम किया।

11वीं शताब्दी में अलहसन हुआ, जो सभी युगों के महान् वैज्ञानिकों की श्रेणी में गिना जाना चाहिए। आंखों के लिए चश्मे तैयार करने के सम्बन्ध में उसने विशेष योगदान किया। यह कला उसने यूनानियों से सीखी थी और उनसे भी आगे तरक्की की थी और आंखों की ज्योति के सम्बन्ध में उनकी गलतियों को इसने ठीक किया। अलहसन के शरीर रचना और रेखा-गणित के तर्कों ने यह सिद्ध किया कि आंखों में वस्तुओं से रोशनी आती है और उसकी छवि पुतली पर पड़ती है। उसके सिद्धान्त का उल्लेख विज्ञान के इतिहासकारों ने किया है। कैपलर ने अरब चिकित्सकों से आंखों के इलाज के सम्बन्ध में ज्ञान अर्जित किया था।

उसी शताब्दी में अलगजाली हुआ जो अन्दालुसियाई व्यापारी का बेटा था। उसने देकार्त से पहले आत्मचेतना के सत्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसने प्राचीन और आधुनिक संशयवाद के बीच कड़ी स्थापित की। उसने दर्शन में जो महान् योगदान किया, उसका

उल्लेख उसी के शब्दों में मिलता है : 'धर्म से सन्तोष न मिलने पर मैंने सभी अधिकृत बातों को छोड़ने का निश्चय किया और उन सभी बातों से अपने को अलग कर लिया जिन्हें मैंने बचपन में सीखा था। मेरा उद्देश्य वस्तुओं की सत्यता की खोज करना है। इसके परिणामस्वरूप मैं यह निश्चय करना चाहता हूं कि ज्ञान क्या है? अब यह मुझे स्पष्ट हो गया है कि ज्ञान ऐसा होना चाहिए जिससे दृश्यमान वस्तु की व्याख्या हो सके और यह ज्ञान भविष्य में भी उपलब्ध हो सके जिससे गलतियों और अनुमान को दोहराना असम्भव हो जाय। इस प्रकार जब यह मान लिया कि दस तीन से अधिक है—यदि कोई यह कहे कि "तीन दस से अधिक है' और मुझे अपने इस कथन को प्रमाणित करने को कहा जाय कि मैं इस छड़ी को सांप में तब्दील कर सकता हूं और यदि यह रहस्य वास्तव में बदल भी जाय तो भी मेरा विचार उसकी इस गलती से बदलेगा नहीं। उसकी जादूगरी की मैं इतनी ही प्रशंसा करूंगा लेकिन मैं अपने ज्ञान के सम्बन्ध में संदेह नहीं करूंगा।'

मुसलमान विचारक ने एक हजार वर्ष पूर्व यथार्थ ज्ञान के सिद्धान्त को स्थिर किया था। वह सिद्धान्त आज भी सत्य है और वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण जिससे ज्ञान सम्भव होता है अब भी भारतीय विचारकों में कम ही पाया जाता है, जो आज 20वीं शताब्दी में आध्यात्मिक वाक्जाल के रहस्यों में विश्वास करते हैं। इस प्रकार के भ्रामक विचारों के आधार पर वैज्ञानिक ज्ञान को चुनौती दी जाती है।

अलगजाली ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि ज्ञान गणित की भांति पूर्ण रूप से ठीक नहीं होता जब तक कि उसे अनुभव से प्राप्त न किया जाय और अनुभव के नियमों का ठीक से पालन किया

जाय। उनका यह मत था कि अकाट्य विश्वास को इन्द्रिय ज्ञान से प्राप्त किया जाता है। तर्क में (आत्मचेतना) इन्द्रिय ज्ञान की सचाई की जांच करनी पड़ती है। इस बात को देखकर आश्चर्य होता है कि धार्मिक वातावरण में विचारों में इतना अधिक साहस था जबकि चारों ओर असहनशीलता और कट्टरपन का वातावरण था। फिर भी अलगजाली के विचारों का प्रचार उस समय के सभी मुसलमान देशों में होता था। दर्शन के इतिहास में अलगजाली के महत्त्वपूर्ण स्थान का उल्लेख फ्रांसीसी प्राच्यविद् रैनां ने किया है और उसने अलगजाली को आधुनिक संशयवाद का पिता कहा है। ह्यूम ने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जितना अरब दार्शनिक ने कहा था। जिसने उससे करीब सात सौ वर्ष पूर्व अपना सिद्धान्त स्थिर किया था। अलगजाली के विचारों का यह महत्त्व है कि उसके विचारों को ह्यूम के विचारों के समान समझा जाता है जिसके संशयवाद से कांट के विचारों को प्रोत्साहन मिला था। कांट ने आलोचनात्मक दर्शन का ऐसा निर्मम सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसने सभी प्रकार से अनुमान सम्बन्धी विचारों की जड़ों को ही नष्ट कर दिया। लेकिन अलगजाली के विचार अपने समय से काफी आगे के थे। प्रयोगात्मक विज्ञान, जिसको उसने देखा था, को तब तक सत्य सिद्ध करना असम्भव था। प्राविधिकी (टेक्नालाजी) के प्रारम्भिक विकास के अभाव में प्रकृति की वस्तुओं का उस प्रकार गणितीय प्रमाण नहीं मिल सकता था जिसका उस दार्शनिक ने विचार किया था। यही कारण है कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उसने रहस्यवाद में शरण ली, लेकिन उसका यह पतन कांट के पतन की भांति गौरवहीन नहीं था। वस्तुगत रूप से वस्तुओं को प्रमाणित करने के यंत्रों के अभाव में अरब-दार्शनिक की उड़ान के

पर कट गये जबकि कांट ने आत्मगत रूप से अपनी आलोचनात्मक शक्ति को अभिभूत कर लिया था।

अबूबकर 12वीं शताब्दी में हुआ जो पहला ज्योतिषविद् था, जिसने टोल्मी के दैवी शरीरों की स्थिति सम्बन्धी विचारों को अस्वीकार कर दिया था। उसने अन्तरिक्ष के नक्षत्र मण्डल की पद्धति का विचार किया और उनकी गति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये जिनकी सहायता से, बाद में जियोडोनो ब्रुनो, गैलीलियो और कोपरनीकस के युगपरिवर्तनकारी अनुसंधानों को विकसित किया जा सका। उसने लिखा कि 'उसकी पद्धति में सभी गतियों को प्रयोग-सिद्ध आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है अतः उसमें गलती की गुंजाइश नहीं। अबूबकर की मृत्यु उसके सिद्धान्तों को पुस्तक के रूप में लिखने के पहले हो गयी। उसके शागिर्द अल फेटराजियस ने उसकी शिक्षाओं को लोकप्रिय बनाया और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि सभी नक्षत्र एक नियमित गति से चलते हैं। मध्ययुग में उसके ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान को आधारभूत माना जाता था। मुसलमान दार्शनिक के विचारों ने बाईबिल के सृष्टि सम्बन्धी विचारों का खण्डन किया था, उनका प्रभाव ईसाई मठों में भी होने लगा। अकेले रोजर बैकन ही नहीं वरन् उसके प्रतिद्वन्द्वी अलबर्ट मैगनस ने भी अल फेटराजियस की ज्योतिष पुस्तक का आभार स्वीकार किया था जिसने अबूबकर के ज्योतिष सिद्धान्तों की व्याख्या की थी।

अवेरोस के दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों का बाद के अरब दार्शनिकों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था, उसकी रूपरेखा का उल्लेख किया जा चुका है। इस्लामी संस्कृति के इतिहास के मोड़ के समय वह हुआ था। 12वीं शताब्दी तक उनका चरम उत्कर्ष हो चुका था

और प्रतिक्रियावादी शक्तियां अधिक शक्तिशाली हो गयी थीं और उन्होंने प्रगति का मार्ग रोक दिया। उसके साथ ही इस्लामी संस्कृति का पतन आरम्भ हो गया था।

घुमन्तू लोगों के विचारों की स्वतन्त्रता साहस के चरम बिन्दु पर पहुंची थी, जिनका बाद में 'धर्म के सेनापतियों' से टकराव हुआ। इस्लामी विचार ने पांच सौ वर्षों में प्रगति की और अबेरोस ने क्रान्तिकारी सिद्धान्त का सारतत्त्व यह कह कर प्रकट किया कि सत्य का एक ही स्रोत तर्क है, उसके विपरीत कोरडोवा के सुल्तान अलमसूर ने मुल्लाओं के प्रभाव में आकर यह फतवा जारी किया कि उक्त कथन धर्म-विरोधी है और वैसे विचारों के लोगों को दोजख की आग में जलना पड़ेगा। इस्लाम की श्रेष्ठ उपलब्धि की निन्दा के साथ मानव प्रगति के अस्त्र के रूप में उसकी भूमिका समाप्त हो गयी और प्रतिक्रिया असहिष्णुता, अज्ञान और भेदभाव का वह अस्त्र बन गया। आरम्भ में इतिहास ने प्राचीन संस्कृति की विरासत को, दो साम्राज्यों और दो धर्मों के अन्धकूप से उद्धार किया था। लेकिन अपनी ऐतिहासिक भूमिका पूरी करने के बाद इस्लाम ने अपने मौलिक स्वरूप को छोड़ दिया और तुर्की और मंगोल बर्बरता के काले झंडे के नीचे हत्यारों और लुटेरों का गिरोह बन गया।

इस्लाम ने अपनी उपलब्धियों को नकारा। अबेरोस को कोरडोवा के दरबार से खदेड़ दिया गया, जो उसके स्वतंत्र विचारों का सदियों से गढ़ रहा था। उसकी किताबों को जला दिया गया, उन्हें आग में ही नहीं डाला गया वरन् निर्दयतापूर्ण प्रतिक्रिया की स्थापना की गयी। विवेकवाद को धर्म-विरोधी आचरण मान लिया गया। अबेरोस और उसके गुरु अरिस्टॉटिल के नामों से घृणा की जाने लगी। कुछ

समय के बाद प्रतिक्रिया की ऐसी विजय हो गयी जिससे कट्टर मुसलमानों की दृष्टि में, दर्शन 'नास्तिकता, अपवित्रता और अनैतिकता' समझा जाने लगा। लेकिन पांच सौ वर्ष तक अरब लोगों ने जो आध्यात्मिक प्रगति की थी, उन्होंने उसके झण्डे को ऊंचा रखा और उसे धार्मिकता के निरर्थक क्रोध और इस्लामी असहिष्णुता से भी नीचे नहीं किया जा सका जैसा कि ईसाइयों ने पवित्रता और पाखण्ड के आधार पर पहले किया था। अबेरोस का साथ उसके अपने लोगों ने छोड़ दिया लेकिन भविष्य में उसको पुनः प्रतिष्ठित किया गया। धर्म और तर्क के भयंकर संघर्ष में निरंकुश अज्ञान और विचार की स्वतंत्रता के संघर्ष ने यूरोप को हिला दिया और कैथोलिक चर्च की नींव को हिला दिया। 12वीं शताब्दी के बाद से अरब दार्शनिकों की शिक्षाओं का प्रसार हुआ। अबेरोस और अबेरोसवाद ने यूरोप के वैज्ञानिक विचारों को चार सौ वर्षों तक अनुप्राणित किया।

इस्लाम और भारत

यद्यपि जिस समय भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ उस समय तक उसकी प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो चुकी थी और उसके नेतृत्व पर, विद्वान और सुसंस्कृत अरबों के नेतृत्व के स्थान पर दूसरे लोगों का अधिकार हो गया था, लेकिन इसके झंडे पर उसके आरम्भ के नारों का ही उल्लेख था और यदि इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाय तो भारत में मुसलमानों की विजय में फारस और ईसाई देशों की भांति यहां के निवासियों ने भी सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया था। कोई बड़ा राष्ट्र जिसका सुदीर्घ इतिहास हो और पुरानी सभ्यता हो आसानी से विदेशी आक्रमणकारी के सामने घुटने नहीं टेक देता है जब तक कि आक्रमणकारी के साथ विजित देशों की जनता की सहानुभूति और समर्थन न हो। ब्राह्मण व्यवस्था की कठोरता ने बौद्ध क्रांति को भारत में 11वीं और 12वीं शताब्दी में अभिभूत कर दिया था और बहुत से लोगों को नास्तिक और धर्म विरोधी मान कर उन्हें समाज से निकाल कर उनको पदच्युत कर दिया था, उन लोगों ने इस्लाम के सन्देश का स्वागत किया।

मुहम्मद बिनकासिम ने ब्राह्मण शासकों द्वारा पीड़ित जाटों और अन्य जातियों की सहायता से सिन्ध को जीता था। सिन्ध को जीतने के बाद उसने आरम्भिक विजेताओं की नीति का अनुसरण किया था। 'उसने देश में शान्ति स्थापना के उद्देश्य से ब्राह्मणों को सरकारी नौकरियों में नियुक्त किया। उसने उन्हें अपने मन्दिरों की मरम्मत करने और अपने धर्म का अनुसरण करने की इजाजत दी।

भूमि राजस्व वसूली का काम भी उन्हें सौंपा गया और उनके सहयोग से परम्परागत ढंग से स्थानीय नागरिक प्रशासन में उनको बनाये रखा।' (ईलिएट-हिस्ट्री ऑफ इण्डिया)। जब ब्राह्मण लोग भी, कम से कम कुछ लोग भी म्लेच्छों का समर्थन करने को तैयार हो गये तो उस समय देश की सामाजिक स्थिति को सामान्य नहीं कहा जा सकता। स्पष्टतः उस समय समाज इतना विघटित हो गया था और उसमें इतनी अशान्ति थी कि सबसे अधिक अधिकार सम्पन्न वर्ग के लोग भी अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं करते थे। ऐसा सम्भवतः प्रतिक्रान्ति के कारण हुआ था। विभिन्न विरोधी शक्तियों के समर्थन से क्रान्ति को पराजित किया जा सकता है लेकिन विजयी प्रतिक्रान्ति की शक्तियां क्रान्ति से उत्पन्न सामाजिक विघटन के कारणों को मिटा नहीं सकतीं। भारत में बौद्ध क्रान्ति को पराजित नहीं किया गया था, उसका पतन उसकी आन्तरिक कमजोरियों के द्वारा हुआ था। क्रान्ति समर्थक सामाजिक शक्तियां इतनी सुदृढ़ नहीं थीं कि वे क्रान्ति को सफल बनातीं। इसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म का पतन हो गया और देश में आर्थिक विनाश, राजनीतिक दमन और बौद्धिक अराजकता तथा आध्यात्मिक संकट उत्पन्न हो गया। व्यावहारिक रूप से सम्पूर्ण समाज पतन और विघटन की दुखदायी प्रक्रिया से त्रस्त था। यही कारण है कि केवल शोषित और पीड़ित लोग ही इस्लाम के झंडे के नीचे नहीं गये, जिन्हें वहां सामाजिक और राजनीतिक समानता के अधिकार दिये गये, वरन् उच्च वर्गों के लोगों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिए अपनी सेवाएं इस्लाम के सेनापतियों को प्रदान कीं। इससे यह प्रकट होता है कि जनसामान्य पूरी तरह से निराश था और उच्च वर्ग के लोग पूरी तरह भ्रष्ट हो चुके थे।

हिन्दू संस्कृति के प्रबल समर्थक हावेल ने, जिनके विरुद्ध मुसलमानों का प्रशंसक होने का आरोप नहीं है, भारत में इस्लाम के प्रचार के सम्बन्ध में लिखा है—'जिन लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार लिया उन्हें मुसलमान नागरिकों के सभी अधिकार अदालतों में मिले, जिनमें कुरान के आधार पर नियम-कानून चलते थे और उनमें आर्यों के कानून और परम्पराओं के आधार पर विवादों पर विचार नहीं किया जाता था। हिन्दुओं की उन नीची जातियों में इन बातों का बड़ा प्रभाव पड़ा, जिन्हें ब्राह्मण व्यवस्था के कानूनों के द्वारा पीड़ित किया गया था और उन जातियों को अस्पृश्य, अपवित्र और शूद्र कह कर तिरस्कृत किया जाता था।' (हावेल—आर्यन रूल इन इण्डिया)

जो लोग ब्राह्मण व्यवस्था को सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण मानते हैं उनके लिए उक्त आलोचना प्रशंसात्मक नहीं कही जायेगी। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि मुसलमानों के आक्रमण के समय भारत में ऐसे बहुत से लोग थे जो हिन्दू धर्म और कठोर ब्राह्मण परम्परा के प्रति निष्ठावान नहीं थे और इस्लाम के समानता वाले कानूनों को पाने के लिए अपनी विरासत को छोड़ने के लिए तैयार थे। इस्लाम ने विजयी हिन्दू प्रतिक्रिया के अत्याचारों से पीड़ित लोगों को संरक्षण प्रदान किया।

एक अन्य स्थल पर हावेल ने अरब मसीहा हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं के आध्यात्मिक मूल्यों की निन्दा की है, लेकिन भारत में उसके प्रचार के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया है। 'इस्लाम के दर्शन के कारण नहीं उसके सामाजिक कार्यक्रम के कारण भारत में बहुत से लोगों ने उसे स्वीकार लिया।' निस्सन्देह सामान्य जनता को उसके दर्शन से अधिक सरोकार नहीं था। वे उसके सामाजिक कार्यक्रम की ओर आकृष्ट हुए जिसने उनके जीवन को सुधारने का

अवसर प्रदान किया। कोई खराब दर्शन अर्थात् प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण का सम्बन्ध ऐसे सामाजिक कार्यक्रम से नहीं हो सकता जो पीड़ित जनता का समर्थन प्राप्त कर सके। ऐसा इसलिए हुआ कि इस्लाम के सामाजिक कार्यक्रम के पीछे उसका दर्शन था जो हिन्दू दर्शन से अच्छा था। हिन्दू दर्शन सामाजिक विघटन और अराजकता के लिए जिम्मेदार था और इस्लाम ने भारतीय पीड़ित जनता को उससे निजात दिलायी। इस वक्तव्य के द्वारा हावेल ने यह स्वीकार किया। 13वीं और 14वीं शताब्दी में जब इस्लाम को भारत में सफलता मिली और जब वह अपनी मूल क्रांतिकारी भूमिका छोड़ चुका था उस समय भी अपने सामाजिक क्रान्तिकारी स्वभाव के कारण उसने भारत में अपनी जड़ें जमा लीं। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी पतनावस्था में भी इस्लाम ने आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक और सामाजिक प्रगति का प्रतिनिधित्व किया जो हिन्दुओं के अनुदारवाद की तुलना में अधिक प्रगतिशील था।

हावेल भारतीय यूरोपीय संस्कृति के प्रशंसक के रूप में विख्यात है, वह इस संस्कृति को सम्पूर्ण मानव चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप मानता है। दूसरी ओर मुसलमानों के प्रति वह कटु आलोचक था। उसके विचारों के विरुद्ध यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वह हिन्दुओं के विरुद्ध था। यथार्थ यह है कि वह हिन्दुओं का पक्षपाती था। इस कारण जब इतिहासकार के रूप में उसे भारत के अतीत में ऐसी घृणात्मक बातें मिलीं और जिस समय देश की परिस्थितियां खराब थीं तो उसने उनकी कड़ी भर्त्सना नहीं की। उसने लिखा है : 'भारत में इस्लाम की विजय के कारण बाहरी नहीं थे। उनका कारण मुख्यतः यह था कि आर्यावर्त में राजनीतिक पतन की वह स्थिति थी जो हर्ष की मृत्यु के बाद यहां व्याप्त थी।

'इस्लाम के मसीहा के सामाजिक कार्यक्रम में....इस्लाम पर विश्वास लाने वाले लोगों को समान आध्यात्मिक स्तर दिया गया—इससे इस्लाम ने राजनीतिक और सामाजिक सामंजस्य स्थापित किया और उससे उसका साम्राज्यवादी लक्ष्य पूरा हुआ। इस्लाम में, जीवन के व्यवहार से औसत आदमी को खुशी प्रदान करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था थी उसके अन्तर्गत उसे सन्तोष मिला था। भारत में इस्लाम उस समय चरम सीमा में प्रकट हुआ जब बौद्ध दर्शन और अनुदार ब्राह्मणवाद के संघर्ष के कारण देश में संकट उत्पन्न हो गया था। उनके कारण सम्पूर्ण उत्तर भारत में राजनीतिक मतभेद उत्पन्न हो गए थे।'

(हावेल-आर्यन रूल इन इण्डिया)

सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु सातवीं शताब्दी के मध्य में हो गयी थी। इस प्रकार भारत का राजनीतिक विघटन इस्लाम के उत्थान के साथ समानान्तर रूप में चल रहा था। कोई भी सम्राट् चाहे कितना बड़ा क्यों न हो उसकी मृत्यु से इतिहास में मोड़ नहीं आता है। विघटन की प्रक्रिया उसके पहले कई शताब्दियों से चल रही थी। बौद्ध क्रांति ने उसे कुछ समय के लिए रोक दिया था, लेकिन उसके पराजित होने पर वह विघटन की प्रक्रिया बढ़ी, तेज हुई और आगे बढ़ी। निस्सन्देह बौद्ध धर्म के मठों में पतन हुआ और उससे सम्पूर्ण भारतीय समाज पर विघटनकारी प्रभाव पड़ा जिससे मुसलमानों की विजय को सहायता मिली, जिस प्रकार अन्य देशों में ईसाई मठों के पतन के कारण वहां हुआ था।

महमूद गजनी के आक्रमण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए हावेल लिखता है : 'उसकी सेनाओं को प्रायः हर स्थान पर विजय मिली, इससे उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी और उसके

प्रभाव में पश्चिमोत्तर प्रान्त की अनेक लड़ाकू जातियों ने इस्लाम को स्वीकार कर लिया। उनके लिए युद्ध करना ही और विजय प्राप्त करना ही धर्म था और युद्ध क्षेत्र में विजय प्राप्त करना उनके लिए इस्लाम ग्रहण करने का सबसे बड़ा प्रमाण माना गया।' (हावेल—आर्यन रूल इन इण्डिया)। महमूद के आक्रमणों से हिन्दू देवताओं के तीर्थस्थल लड़खड़ा गए, जहां अतीत काल से भक्त लोग पूजा-उपासना के समय दान-दक्षिणा देते थे। इन आक्रमणों के फलस्वरूप उन देवी-देवताओं में विश्वास करने वाले धर्म को गहरा धक्का लगा और उनके विश्वास टूटे। उन परिस्थितियों में सामान्य धार्मिक भावनाओं और आध्यात्मिक रुचि वाली जनता ने अपने शक्तिहीन देवताओं पर विजय प्राप्त करने वाले धर्म को अंगीकार कर लिया और नये धर्म को स्वीकार करने पर उन्हें लाभ भी बहुत अधिक हुआ। युगों से लाखों लोग थानेश्वर, मथुरा और सोमनाथ के देवताओं की दैवी और आध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास करते थे। उनके पुजारियों ने असीमित सम्पदा और धन का संग्रह कर लिया था क्योंकि उन्होंने लोगों में इस विश्वास को बढ़ाया था कि वे लोग देवता की कृपा श्रद्धालुओं के लिए अर्जित कर सकते थे। इस्लामी आक्रमण से एकाएक विश्वास और परम्परा का वह महल कच्चे भवन की भांति चरमराकर टूट गया। जब महमूद की सेनाएं मन्दिर के निकट पहुंचीं तो पुजारियों ने लोगों को समझाया कि देवता आक्रमणकारियों का विनाश कर देंगे। लोग इस रहस्य को देखने की प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन वैसा नहीं हुआ। वास्तव में ईश्वर (अल्लाह) ने आक्रमणकारियों को विजय दिलायी। रहस्यों और विश्वासों पर विश्वास करने वाले बड़े और अधिक शक्तिशाली पर विश्वास करने लगते हैं। धर्म के सभी मान्य मापदण्डों से जिन

लोगों ने उस संकटकाल में इस्लाम को स्वीकार किया वे लोग बड़े धार्मिक थे।

भारत में मुसलमानों की विजय के आन्तरिक और बाह्य कारणों की जांच करना, आज के युग के लिए व्यावहारिक मूल्य की बात है। इस प्रकार की जांच से कट्टर हिन्दू को अपने पड़ोसी मुसलमान को निम्नकोटि का व्यक्ति समझने के पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से मुक्ति मिलेगी। पुराने प्रचलित विचारों को छोड़ कर हिन्दू मुसलमानों की भारत की विजय का रचनात्मक प्रभाव समझ सकने में सफल होगा। इससे विजेता के प्रति विजित में व्याप्त घृणा से भी वह अपने को मुक्त कर सकेगा। जब तक व्यवहार में इस प्रकार का आमूल परिवर्तन नहीं होगा, इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन नहीं हो सकेगा और साम्प्रदायिक समस्या को भी सुलझाया नहीं जा सकेगा। इसके बिना हिन्दू मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रीयता का अंग नहीं मान सकेगा और जब तक वे यह नहीं मान लेंगे कि भारत की प्राचीन सभ्यता के नष्ट होने और विघटित होने के बाद उत्पन्न संकट से इस्लाम ने उद्धार किया तब तक वे इस्लाम के महत्त्व को स्वीकार नहीं कर पायेंगे। इसके साथ ही इतिहास के सही अध्ययन से मुसलमानों की भारत की विजय को ठीक ढंग से समझा जा सकेगा और उसकी सहायता से हम अपने वर्तमान दुर्भाग्य के कारणों को दूर कर सकेंगे।

दूसरी ओर आज के कुछ मुसलमान भारत में उनके धर्म की गौरवपूर्ण भूमिका के प्रति सचेत हो सकते हैं। उनमें से बहुत से लोग विवेकवाद और अरबों के संशयवाद को अस्वीकार करके उनकी निन्दा कर सकते हैं जो कुरान की शिक्षाओं से भिन्न है। लेकिन इस्लाम के इतिहास में उन बातों का अविस्मरणीय स्थान है

जिसे उसके मौलिक उदारता और अधार्मिक प्रवृत्तियों के आधार पर अरब के दार्शनिकों ने विकसित किया था, बजाय उनके जिन्हें बाद के प्रतिक्रियावादी मुल्लाओं और नये धर्म परिवर्तन करने वाले तातार लोगों ने बर्बर कट्टरपन का प्रचार करके किया था। भारत में प्रवेश करने के पहले इस्लाम की प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो गयी थी। भारत में सिन्धु नदी और गंगा के तट पर इस्लाम का झंडा सरासेनी अरब योद्धाओं ने नहीं फहराया था वरन् उसे विलासिता से भ्रष्ट ईरानियों और मध्य एशिया के बर्बर लोगों ने फहराया था, जिन्होंने बाद में इस्लाम धर्म अपनाया था। इन दोनों शक्तियों ने अरब साम्राज्य को पराजित किया—जिस अरब साम्राज्य की स्थापना हजरत मुहम्मद की याद में कायम की गई थी। फिर भी आक्रमणकारी मुसलमानों का स्वागत उन लाखों लोगों ने किया जो ब्राह्मण प्रतिक्रिया के शिकार थे, जिन्होंने बौद्ध क्रान्ति को पराजित कर भारतीय समाज में अराजकता का संकट उत्पन्न कर दिया था। ईरानी और मंगोल विजेताओं में अरब योद्धाओं की परम्परागत श्रेष्ठता, सहनशीलता और उदारवाद के प्रभाव से एकदम वंचित नहीं थे। यह तथ्य कि आक्रमणकारियों के रूप में थोड़ी संख्या में दूरदराज के देशों से आकर जिन लोगों ने भारत में अपना राज्य कायम किया और यहां उन्हें विरोधी धर्मों का सामना करना पड़ा, जिनमें से भारी संख्या में इस्लाम को स्वीकार कर लिया, इससे यह प्रमाणित होता है कि भारतीय समाज की वस्तुगत आवश्यकताओं को उन्होंने पूरा किया था। भारत में आने के समय इस्लाम अपने मौलिक क्रान्तिकारी विचारों को छोड़ चुका था, लेकिन हिन्दू समाज की तुलना में उसमें क्रान्तिकारी प्रभाव अधिक था। भारत में मुसलमानों का राज्य मजबूत हुआ, वह केवल सैनिक विजयों के

कारण नहीं हुआ वरन् उसको सुदृढ़ करने में इस्लाम धर्म के प्रचार से भी सहायता मिली थी। यही इस्लामी धर्म और कानूनों का महत्त्व था।

यहां तक अपने मुस्लिम विरोधी विचारों के होते हुए भी हावेल ने बिना किसी संकोच के यह स्वीकार किया है : 'मुसलमानों के राजनीतिक विचारों का प्रभाव हिन्दू सामाजिक जीवन पर दो प्रकार से पड़ा। उसके कारण हिन्दुओं की जाति व्यवस्था अधिक जड़वत् हो गयी और दूसरी ओर उसके प्रति विद्रोह की भावना अधिक तीव्र हो गयी। उसने हिन्दू समाज की नीची जातियों के लोगों को उसी प्रकार आकर्षित किया जैसे रेगिस्तान के बद्दुओं को किया था....उसे स्वीकार करके शूद्र भी स्वतन्त्र व्यक्ति हो गया और शासक के धर्म में जाने से उसकी स्थिति ब्राह्मणों के मालिकों के समान हो गयी। यूरोप के नवजागरण की भांति उससे बौद्धिक मंथन शुरू हुआ और बहुत से ऐसे लोग उत्पन्न हुए जो अपने मौलिक विचारों के लिए प्रसिद्ध हुए। नवजागरण की भांति यह बौद्धिक मंथन अधिकतर नगरों में हुआ। उसके प्रभाव में बद्दुओं ने तम्बुओं में रहना छोड़ दिया था, उसी भांति शूद्रों ने अपने गांवों को छोड़ दिया....'

(हावेल—आर्यन रूल इन इण्डिया)

हावेल का वक्तव्य अत्यन्त उज्ज्वल है। इसमें भारत के अनेक धर्म सुधारकों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें कबीर, नानक, तुकाराम, चैतन्य आदि प्रमुख हैं और जिन्होंने ब्राह्मणवाद की कठोरता के विरुद्ध जन-विद्रोह को प्रकट किया था। प्रायः सभी धर्म सुधारक मुसलमानों के आगमन के बाद पैदा हुए थे।

इतिहास के इस तथ्यपरक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों के धर्म और संस्कृति के प्रति अनादर का भाव कितना बेहूदा था। उस भावना ने इतिहास का अनादर किया और हमारे देश के राजनीतिक भविष्य को क्षति पहुंचायी है। मुसलमानों से ज्ञान प्राप्त करके यूरोप आधुनिक सभ्यता का नेता बन गया। आज भी उसके ऋणी लोग अपने पुराने ऋण के लिए शर्म का अनुभव नहीं करते हैं। दुर्भाग्य से भारत इस्लामी संस्कृति के इस ऋण से पूरा लाभ इसलिए नहीं उठा सका क्योंकि उसने इस्लाम की विशिष्टता को स्वीकार नहीं किया। अब देर में आये नवजागरण के बीच में भारतीय, हिन्दू और मुसलमान दोनों मानव इतिहास की स्मरणीय प्रेरणा से लाभ नहीं उठा सके। मानव संस्कृति में इस्लाम के ज्ञान और संस्कृति के योगदान की उचित प्रशंसा को समझने से हिन्दुओं को यह धक्का लगेगा कि उनका आत्मसन्तोष अहंकार मात्र था। इस ज्ञान से आज के मुसलमानों को उनके संकुचित दृष्टिकोण से मुक्त किया जा सकता है और अपने सच्चे धर्म की प्रेरणा से उन्हें राष्ट्रीय जागरण में शामिल किया जा सकता है।

इतिहास

पिछली घटनाओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति और विभाजन के पूर्व इस पुस्तक का अधिक विस्तार से पठन-पाठन होता तो अच्छा था। इस्लाम के इतिहास के अच्छे ज्ञान और उसकी वस्तुगत समझदारी से भारत के मुसलमान और गैर-मुसलमान ऐसा कुछ सीख सकते थे, जिसके द्वारा दुखान्त घटनाओं और मानव यातनाओं को बहुत कुछ रोका जा सकता था। लेकिन अभी भी देर नहीं है। लोगों को इस्लाम की जानकारी और समझदारी से उस क्षति को कम किया जा सकता है, जो उन्हें न जानने से हुई है। इसलिए इस छोटी पुस्तक 'इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका' का अपना अन्तर्निहित मूल्य है। मानव इतिहास के एक आकर्षक अध्याय को विद्वत्तापूर्ण और सुन्दर ढंग से लिखा गया है।

वाग्देवी
पॉकेट
बुक्स

वाग्देवी प्रकाशन
बीकानेर
ISBN 81-85127-51-4
मूल्य 20.00 रुपये